उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

मार्च, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
आरती देवी (श्रीमती) **बनाम** वीरेन्द्र कटोच	381
कामिनी कपूर **बनाम** पंजाब नेशनल बैंक	319
जगदीश ठाकुर और अन्य **बनाम** शिव दयाल **उर्फ** शिव दास और अन्य	399
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** मोहम्मद मक़बूल खताना और अन्य	326
पतासी देवी (श्रीमती) मृतका जरिए विधिक प्रतिनिधि श्री गोपाल गुप्ता **बनाम** रवि कुमार माथुर और अन्य	354
मुमताज़ुल करीम **बनाम** श्रीमती विक़ारूननिसा	334
मैसर्स न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** गुलफ़ाम सैफी	299
शेर मंगत राम **बनाम** कृष्णा देवी और अन्य	428
शेर सिंह और अन्य **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य	408
सुशीला देवी **बनाम** बाला राम	346

संसद् के अधिनियम

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (10)

मार्च, 2014

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
महमूद अली ख़ां

महत्वपूर्ण निर्णय

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 147(5), 149(1), 149(2)(क)(ii) और 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – प्रश्नगत यान रोड पर चलाने के लिए विधिमान्य परमिट का न होना – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां बीमा पालिसी की शर्तों के भंग में यान चलाया गया हो वहां भी बीमा कंपनी प्रतिकर के दायित्वाधीन है तथापि, बीमा कंपनी बीमाकृत व्यक्ति से संदत्त प्रतिकर की धनराशि वसूल करने की हकदार होगी ।

मैसर्स न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **गुलफ़ाम सैफी** 299

संसद् के अधिनियम

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (10)

पृष्ठ संख्या 299 – 439 **(2014) 1 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – मार्च, 2014 (पृष्ठ संख्या 299 – 439)

संपादक-मंडल

श्री पी. के. मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

प्रो. डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन
अकादमी, मसूरी (उत्तराखण्ड)

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ
विश्वविद्यालय

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली ख़ां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 12

वार्षिक : ₹ 135

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

पृष्ठ संख्या

मुस्लिम विवाह-विघटन अधिनियम, 1939 (1939 का 8)

– धारा 2(viii)(क) और (च) – विवाह-विघटन – पति के कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा क्रूरता – पति द्वारा पत्नी की प्रतिरक्षा न करना – पति द्वारा दूसरा विवाह – पति द्वारा पहली पत्नी के साथ दूसरी पत्नी के समान व्यवहार न करना – पति का व्यवहार क्रूरता की श्रेणी में आता है – पत्नी इन आधारों पर विवाह-विघटन की डिक्री के लिए हकदार है ।

मुमताज़ुल करीम बनाम **श्रीमती विक़ारूननिसा** 334

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 147(5), 149(1), 149(2)(क)(ii) और 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – प्रश्नगत यान रोड पर चलाने के लिए विधिमान्य परमिट का न होना – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां बीमा पालिसी की शर्तों के भंग में यान चलाया गया हो वहां भी बीमा कंपनी प्रतिकर के दायित्वाधीन है तथापि, बीमा कंपनी बीमाकृत व्यक्ति से संदत्त प्रतिकर की धनराशि वसूल करने की हकदार होगी ।

मैसर्स न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **गुलफ़ाम सैफी** 299

– धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा यान चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति न होने का आक्षेप – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां बीमा कंपनी ने यह आक्षेप उठाया हो कि बीमाकृत यान के चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी वहां भी वह आहत

पृष्ठ संख्या

व्यक्ति को प्रतिकर की रकम का संदाय करने के दायित्वाधीन होगी – तथापि, वह संदत्त धनराशि को बीमाकृत यान के स्वामी से वसूल करने की हकदार होगी ।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **मोहम्मद मक़बूल खताना और अन्य** 326

राजस्थान परिसर (किराया और बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1950

– धारा 13(1)(क) और 13(3)(4) – किराएदारी – किराएदार द्वारा छह मास से अधिक की अवधि तक किराए का संदाय न किया जाना – बेदखली के लिए वाद – किराएदार द्वारा यह कथन किया जाना कि उसके अधिवक्ता ने किराया मकान मालिक के अधिवक्ता को संदत्त कर दिया था – किराया संदत्त करने के संबंध में कोई रसीद पेश न की जानी – किराएदार बेदखल किए जाने का पात्र है – मात्र मौखिक कथन के आधार पर उसे अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता ।

पतासी देवी (श्रीमती) मृतका जरिए विधिक प्रतिनिधि श्री गोपाल गुप्ता बनाम **रवि कुमार माथुर और अन्य** 354

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4)

– धारा 16 और 116 – पट्टा – संपत्ति का विक्रय – पट्टेदार द्वारा उप-पट्टाकर्ता को भू-स्वामी मानने से इनकार – किराएदार या पट्टेदार या उप-पट्टेदार अपने मकान-मालिक के हक़ से इनकार करने से विबद्ध है यदि वह वस्तुतः या प्रत्यक्षतया मकान-मालिक या पट्टाकर्ता द्वारा दिए गए पट्टे का उपभोग कर लेता है – पट्टेदार पट्टाकर्ता को कब्ज़ा वापस करने के लिए आबद्ध है ।

कामिनी कपूर बनाम **पंजाब नेशनल बैंक** 319

पृष्ठ संख्या

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 39, नियम 1 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 100] – निचले न्यायालयों के आदेश – द्वितीय अपील – हस्तक्षेप – द्वितीय अपील में तथ्य के निष्कर्षों में तभी हस्तक्षेप किया जाना चाहिए जब ऐसा निर्णय या आदेश संकल्पनाओं और उपधारणाओं के आधार पर पारित किया गया हो ।

शेर मंगत राम बनाम **कृष्णा देवी और अन्य** 428

– आदेश 39, नियम 1 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 5] – परिसीमा संबंधी आक्षेप – सर्वप्रथम द्वितीय अपील में उठाया जाना – विधिमान्यता – जहां पक्षकार द्वारा निचले न्यायालय में परिसीमा संबंधी आक्षेप न किया गया हो वहां द्वितीय अपील प्रक्रम पर ऐसा आक्षेप उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

शेर मंगत राम बनाम **कृष्णा देवी और अन्य** 428

– धारा 100 [सपठित हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972] – वाद भूमि पर कब्जे सहित स्वामी होने का दावा करना – राजस्व अभिलेखों द्वारा पुष्टि होना – यदि कोई व्यक्ति दस्तावेजी साक्ष्यों के साथ ही मौखिक साक्ष्यों द्वारा यह साबित कर देता है कि वह वाद भूमि पर कब्जे सहित स्वामी है और उसकी सम्पुष्टि तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन भी होती है तो इसमें हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं होता और इस निमित्त पारित निर्णय और डिक्री वैध और कायम रखे जाने योग्य होगी ।

जगदीश ठाकुर और अन्य बनाम **शिव दयाल** उर्फ **शिव दास और अन्य** 399

पृष्ठ संख्या

– धारा 100 [सपठित अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 और हिमाचल प्रदेश लोक परिसर और भूमि (बेदखली और किराया वसूली) अधिनियम, 1971 की धारा 4] – कतिपय व्यक्तियों द्वारा वन भूमि पर मकान आदि का निर्माण करना – स्थानीय प्रशासन द्वारा उन्हें कतिपय सुविधाएं जैसे सड़कें, स्ट्रीट लाइटें आदि उपलब्ध कराना – उन मकानों पर लम्बे समय तक कब्जे के आधार पर प्रतिकूल कब्जे का दावा करते हुए हक का दावा करना – उनकी बेदखली के लिए सरकार द्वारा नोटिस जारी करना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि विवादित भूमि वन भूमि है तो किसी भी स्थिति में उस भूमि को आबंटित नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसका हक राज्य में निहित होता है और यदि कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह ऐसी भूमि पर कब्जा करके मकान आदि का निर्माण कर लेता है और स्थानीय प्रशासन भी उन्हें सड़कें, स्ट्रीट लाइटें आदि लगवाकर कतिपय सुविधाएं प्रदान करता है बावजूद इसके इन्हें प्राधिकृत नहीं कहा जा सकता है और ऐसी भूमि पर प्रतिकूल कब्जे का दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसी भूमि सरकार में निहित होती है ।

शेर सिंह और अन्य बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 408

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13(1)(ik) और 28 – पति-पत्नी के बीच विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं करना अर्थात् पत्नी द्वारा विवाहयेत्तर सम्भोग करने से मना करना – पत्नी द्वारा पति एवं उसके कुटुम्ब सदस्यों के प्रति असामान्य, क्रूरता

पृष्ठ संख्या

और गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार करना तथा उन्हें दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी देना – पत्नी द्वारा बिना युक्तियुक्त कारण से वैवाहिक गृह का त्याग करना – इन परिस्थितियों में पत्नी द्वारा पति के प्रति क्रूरता और अभित्यजन साबित समझा जाएगा और पति के पक्ष में पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री कायम रखे जाने योग्य होगी ।

आरती देवी (श्रीमती) बनाम **वीरेन्द्र कटोच** 381

– धारा 16 (1976 के अधिनियम सं. 60 द्वारा यथा संशोधित) – समुदाय में प्रचलित रूढ़ि के अनुसार विवाह – उत्तराधिकार – प्रतिवादियों द्वारा संपत्ति में अधिकार के बारे में आपत्ति – पुत्री के अंक पत्र, बैंक पास बुक तथा अन्य साक्ष्य से विवाह होना साबित होना – पत्नी और पुत्री को संपत्ति में उनका हक़ देने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

सुशीला देवी बनाम **बाला राम** 346

मैसर्स न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

गुलफ़ाम सैफी

तारीख 1 मार्च, 2012

न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति वाई. सी. गुप्ता

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 147(5), 149(1), 149(2)(क)(ii) और 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – प्रश्नगत यान रोड पर चलाने के लिए विधिमान्य परमिट का न होना – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां बीमा पालिसी की शर्तों के भंग में यान चलाया गया हो वहां भी बीमा कंपनी प्रतिकर के दायित्वाधीन है तथापि, बीमा कंपनी बीमाकृत व्यक्ति से संदत्त प्रतिकर की धनराशि वसूल करने की हकदार होगी ।

वर्तमान अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, गौतम बुद्ध नगर द्वारा तारीख 8 अगस्त, 2011 को पारित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन फाइल की गई है । तारीख 20 नवम्बर, 2008 को दोपहर लगभग 11.00 बजे दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 को दुर्घटना में गंभीर क्षतियां पहुंचने के कारण उसके द्वारा 2010 का मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 84 फाइल किया गया था । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अधीन बीमा पालिसी जारी करने वाला कोई बीमाकर्ता उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है । यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय

बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ दायित्व के संबंध में निर्णीत-ऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो । उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश में जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए बीमा कंपनी/अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है और उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है । विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है । आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने के लिए अधिकरण के समक्ष समुचित कार्यवाहियां आरंभ करे और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करे । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1, या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 4) द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे । अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटाई जाएगी । (पैरा 20, 22, 36, 40, 41, 42 और 43)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य** ;	39
[2008]	2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.) : **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य** ;	24, 31
[2007]	(2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.) : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त** ;	24, 29, 31
[2007]	2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद) : **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य** ;	38
[2005]	2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) = (2004) 8 एस. सी. सी. 517 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा** ;	16, 35
[2004]	[2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 : **नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य** ;	24, 27, 29, 30, 31
[2004]	2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.) : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य** ;	16, 34
[1998]	ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588 : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य** ।	24, 25

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की प्रथम अपील सं. 3346.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्रीमती अर्चना सिंह

दावेदारों की ओर से –

निर्णय

वर्तमान अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, गौतम बुद्ध नगर द्वारा तारीख 8 अगस्त, 2011 को पारित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन फाइल की गई है । तारीख 20 नवम्बर, 2008 को दोपहर लगभग 11.00 बजे दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 को दुर्घटना में गंभीर क्षतियां पहुंचने के कारण उसके द्वारा 2010 का मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 84 फाइल किया गया था ।

2. दावा याचिका में यह पक्षकथन किया गया था कि तारीख 20 नवम्बर, 2008 को एक ट्रक जिसका रजिस्ट्रेशन सं यूपी-17सी-5271 है (जिसे इसमें इसके पश्चात् "प्रश्नगत यान" कहा गया है) को उसके चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए पुलिस स्टेशन-दादरी, गौतम बुद्ध नगर के अतंर्गत जी.टी. रोड पर नई सब्जी मंडी के नजदीक दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 की मोटरसाइकिल को टक्कर मारी जिसके परिणामस्वरूप दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 को गंभीर क्षतियां पहुंचीं ।

3. प्रत्यर्थी सं. 2 प्रश्नगत यान का चालक है और प्रत्यर्थी सं. 3 प्रश्नगत यान का स्वामी है । अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रश्नगत यान की बीमाकर्ता थी ।

4. पक्षकारों के बीच अभिवाकों के आदान-प्रदान के पश्चात्, अधिकरण ने उक्त दावा मामले में विवाद्यक विरचित किए ।

5. उक्त दावा मामले में साक्ष्य पेश किया गया था ।

6. अधिकरण ने अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने के पश्चात्, विभिन्न विवाद्यकों पर अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए ।

7. अधिकरण ने अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत दुर्घटना प्रश्नगत यान (अर्थात् ट्रक) के चालक द्वारा यान उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक रीति में चलाने के कारण हुई थी जिसके

कारण दावेदार प्रत्यर्थी सं. 1 को गंभीर क्षतियां पहुंचीं ।

8. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से कोई उपेक्षा सिद्ध नहीं हुई है ।

9. अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान के चालक के पास दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी ।

10. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान दुर्घटना की तारीख और समय पर अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था ।

11. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि दुर्घटना के समय, उस रोड पर जिस स्थान पर दुर्घटना हुई थी, यान चलाने के लिए प्रश्नगत यान के संबंध में कोई रूट परमिट नहीं था ।

12. उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, अधिकरण ने तारीख 8 अगस्त, 2011 को आक्षेपित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय पारित किया और अन्य बातों के साथ-साथ दावा याचिका के फाइल करने के तारीख से अंतिम संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर सहित 1,08,150/- रुपए की प्रतिकर की धनराशि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 के लिए अधिनिर्णीत की ।

13. तथापि, अधिकरण द्वारा अभिलिखित इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि उस रोड पर चलाने के लिए प्रश्नगत यान के संबंध में कोई रूट परमिट नहीं था जिस स्थान पर दुर्घटना हुई थी, अधिकरण ने यह निदेश दिया कि आरंभतः प्रतिकर की धनराशि अपीलार्थी-बीमा कंपनी को संदत्त करनी होगी और इसके पश्चात्, अपीलार्थी-बीमा कंपनी को प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने का अधिकार होगा ।

14. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्रीमती अर्चना सिंह को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

15. अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् कांउसेल श्रीमती अर्चना सिंह ने यह दलील दी है कि अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि पूर्वोक्त प्रश्नगत यान बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के विरुद्ध चलाया जा रहा था, अधिकरण ने प्रतिकर की धनराशि का संदाय करने के लिए अपीलार्थी बीमा कंपनी को निदेश देने में और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का आदेश करने में गलती की है ।

16. श्रीमती अर्चना सिंह ने यह दलील दी कि किसी भी दशा में अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 3 है) के विरुद्ध उचित रूप से सुरक्षित किया जाना चाहिए था ताकि आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर का संदाय करने के पश्चात् अपीलार्थी-बीमा कंपनी उपर्युक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके । श्रीमती अर्चना सिंह ने इस संबंध में निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया है :–

1. **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1] ;

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा**[2] ;

17. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्रीमती अर्चना सिंह द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया ।

18. जहां तक श्रीमती अर्चना सिंह द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अधिकरण ने प्रतिकर का संदाय करने के लिए और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए बीमा कंपनी को निदेश करने में गलती की है, इस संबंध में मोटर यान अधिनियम, 1988 के सुसंगत उपबंधों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा ।

19. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 की उपधारा (5) इस प्रकार है :–

"**147. पालिसियों की अपेक्षाएं तथा दायित्व की सीमाएं** –

(1) से (4) .....

(5) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई बीमाकर्ता जो इस धारा के अधीन बीमा पालिसी देता है, उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।"

---

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

[2] 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) = (2004) 8 एस. सी. सी. 517.

20. इस प्रकार, उपर्युक्त उपबंध यह उपबंधित करता है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अधीन बीमा पालिसी जारी करने वाला कोई बीमाकर्ता उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।

21. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 में जहां तक यह सुसंगत है, निम्नलिखित उपबंधित है :–

> "149. **पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के विरुद्ध हुए निर्णयों और अधिनिर्णयों की तुष्टि करने का बीमाकर्ताओं का कर्तव्य** – (1) यदि किसी व्यक्ति के पक्ष में, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिए जाने के पश्चात्, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्व के संबंध में (जो दायित्व पालिसी के निबंधनों के अंतर्गत है) (या धारा 163-क के उपबंधों के अधीन है) ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय और अधिनिर्णय अभिप्राप्त कर लिया जाता है जिसका पालिसी द्वारा बीमा किया हुआ है तो इस बात के होते हुए भी कि बीमाकर्ता पालिसी को शून्य करने या रद्द करने का हकदार है अथवा उसने पालिसी शून्य या रद्द कर दी है, बीमाकर्ता इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति को, उस दायित्व के संबंध में उसके अधीन देय राशि, जो बीमाकृत राशि से अधिक न होगी, खर्चों की बाबत देय किसी रकम तथा निर्णयों पर ब्याज संबंधी किसी अधिनियमिति के आधार पर उस राशि पर ब्याज की बाबत देय किसी धनराशि सहित इस प्रकार देगा मानो वह निर्णीत-ऋणी हो ।
>
> (2) से (7).....।"

22. उपर्युक्त उद्धृत उपबन्ध से यह दर्शित होता है कि यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ दायित्व के संबंध में निर्णीत-ऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता

पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो ।

23. उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश में जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए बीमा कंपनी/अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है और उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है ।

24. उपरोक्त निष्कर्ष माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों द्वारा समर्थित है :–

1. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य**[1]

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2]

3. **नेशनल इंश्योरेंस कं. लि.** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[3]

4. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**[4]

25. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य**[1] वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "7. अतः, हमारे समक्ष यही स्थिति है । बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64-फख द्वारा सृजित वर्जन के बावजूद अपीलार्थी, प्राधिकृत बीमाकर्ता ने बस के लिए प्रीमियम प्राप्त किए बिना बीमा पालिसी जारी कर दी थी । मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 (5) और धारा 149(1) के उपबंधों के आधार पर अपीलार्थी उस दायित्व के संबंध में तृतीय पक्षकार की जिसके लिए पालिसी ली गई थी, क्षतिपूर्ति के लिए और इसकी हकदारी होते हुए भी उसके संबंध में प्रतिकर के अधिनिर्णयों का समाधान करने के लिए दायी है, (जिस पर हम कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं) भले ही वह इस कारण से

---

[1] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588.

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[3] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

[4] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

पालिसी से इनकार करे या रद्द कराए कि प्रीमियम के संदाय में जारी चैक का आदरण नहीं हुआ था ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

26. इस प्रकार, यह विनिश्चय, मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 (5) और 149 (1) के आधार पर उपर्युक्त उल्लिखित निष्कर्ष का समर्थन करता है ।

27. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"105. इन याचिकाओं में उठे विभिन्न विवाद्यकों से संबंधित हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है –

(i) मोटर यान अधिनियम, 1988 का अध्याय 11 जिसमें पर-व्यक्तियों के जोखिमों के विरुद्ध यानों के अनिवार्य बीमा के लिए उपबंध है, मोटर यानों के प्रयोग के द्वारा कारित दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर द्वारा अनुतोष प्रदान करने के लिए एक समाज कल्याणकारी विधान है । सभी यानों का अनिवार्य बीमा कराने का उपबंध इसी सर्वोपरि उद्देश्य की दृष्टि से है और अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन उक्त उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए किया जाना चाहिए ।

(ii) बीमाकर्ता मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क या धारा 166 के अधीन फाइल दावा याचिका में, अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त अधिनियम की धारा 149(2)(क)(ii) के निबंधनों के अनुसार प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का हकदार है ।

(iii) बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए पालिसी की शर्त का भंग अर्थात् अधिनियम की धारा 149 की उपधारा 2(क)(ii) में यथाअंतर्विष्ट चालक अयोग्यता या चालक द्वारा अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को बीमाकृत व्यक्ति द्वारा किया गया साबित होना चाहिए । मात्र चालन अनुज्ञप्ति का न होना, उसका जाली या अविधिमान्य होना या सुसंगत समयबिंदु पर

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

यान चालन के लिए चालक की अयोग्यता स्वयमेव ही बीमाकृत व्यक्ति या पर-व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षाएं नहीं हैं । बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध अपने दायित्व से बचने के लिए बीमाकर्ता को यह साबित करना चाहिए कि बीमाकृत व्यक्ति उपेक्षा का दोषी था और वह सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति प्राप्त चालक या ऐसे व्यक्ति द्वारा जो सुसंगत समय पर यान के चालन के लिए अयोग्य नहीं था, यानों के प्रयोग के संबंध में पालिसी की शर्तों को पूरा करने के मामले में युक्तियुक्त सावधानी बरतने में विफल रहा ।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपने दायित्व से बचने के लिए न केवल उक्त कार्यवाहियों में उपलब्ध प्रतिरक्षा(ओं) को सिद्ध करना चाहिए अपितु यान के स्वामी की ओर से 'भंग' को भी सिद्ध करना चाहिए ; जिसके सबूत का भार उन पर होगा ।

(v) न्यायालय इस प्रकार का कोई मानदंड अधिकथित नहीं कर सकता है कि उक्त भार का किस प्रकार निर्वहन किया जाएगा क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

(vi) यहां तक कि जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने या सुसंगत अवधि के दौरान यान चालन की अपनी अर्हता से संबंधित पालिसी की शर्त से संबंधित बीमाकृत व्यक्ति के भंग को साबित कर देता है तो उसे (बीमाकर्ता को) उस समय तक बीमाकृत व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व से बचने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों के उक्त भंग इतने मौलिक न हों कि वे दुर्घटना से संबंधित पाए जाएं । पालिसी की शर्तों का निर्वचन करते समय अधिकरण अधिनियम की धारा 149(3) के अधीन बीमाकृत व्यक्ति को उपलब्ध प्रतिरक्षाओं को अनुज्ञात करने से संबंधित मूल भंग की संकल्पना और मुख्य प्रयोजन के नियम को लागू करेगा ।

(vii) यह प्रश्न कि क्या स्वामी ने यह पता लगाने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि क्या चालक द्वारा प्रस्तुत चालन अनुज्ञप्ति (जाली अनुज्ञप्ति या अन्यथा) विधि की अपेक्षा

को पूरा करती है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर अवधारित किया जाएगा ।

(viii) यदि दुर्घटना के समय यान ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति थी तो बीमा कंपनियां डिक्री की तुष्टि करने की दायी होंगी ।

(ix) धारा 168 के साथ पठित धारा 165 के अधीन गठित दावा अधिकरण मोटर यान के प्रयोग के कारण होने वाली दुर्घटनाओं, जिनमें पर-व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति या उसकी संपत्ति को नुकसान अंतर्वलित होता है, के संबंध में सभी दावों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम है । अधिकरण की उक्त शक्ति एक ओर दावाकर्ता या दावाकर्ताओं और दूसरी ओर बीमाकृत व्यक्ति, बीमाकर्ता और चालक के मध्य के आंतरिक दावों का विनिश्चय करने तक निर्बंधित नहीं है । प्रतिकर के दावे का न्यायनिर्णयन और बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षा या प्रतिरक्षाओं की उपलब्धता का विनिश्चय करने के दौरान अधिकरण को बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर विवादों का विनिश्चय करने के लिए आवश्यक रूप से शक्ति और अधिकारिता प्राप्त है । दावाकर्ता द्वारा प्रतिकर के दावे के न्यायनिर्णयन और इस पर किए गए अधिनिर्णय के दौरान बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर दावों और विवादों पर दिया गया विनिश्चय दावाकर्ताओं के पक्ष में अधिनिर्णय के प्रवर्तन और निष्पादन के लिए अधिनियम की धारा 174 में यथाउपबंधित रीति में प्रवर्तनीय और निष्पादनीय है ।

(x) जहां अधिनियम के अधीन दावे का न्यायनिर्णयन करने पर अधिकरण का यह निष्कर्ष हो कि बीमाकर्ता ने उपधारा (7) के साथ पठित धारा 149(2) के उपबंधों के अनुसार अपनी प्रतिरक्षा को संतोषप्रद रूप से साबित कर दिया है, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा ऊपर निर्वचन किया गया है, वहां अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर के और उन धनराशियों के संबंध में जिनका संदाय करने के लिए उस अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है बीमाकृत व्यक्ति को प्रतिपूर्ति करे । अधिकरण द्वारा दावे का इस प्रकार अवधारण प्रवर्तनीय होगा

और बीमाकृत व्यक्ति से बीमाकर्ता को देय ठहराई गई धनराशि राजस्व के रूप में अधिनियम की धारा 174 के अधीन दी गई रीति में अधिकरण द्वारा कलक्टर को जारी प्रमाणपत्र पर वसूल की जाएगी । प्रमाणपत्र भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली के लिए केवल तभी जारी किया जाएगा जैसा कि अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (3) द्वारा यथाअपेक्षित है, जब बीमाकृत व्यक्ति अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय की घोषणा की तारीख से बीस दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने में असफल रहता है ।

(xi) उपधारा (4) के परंतुक के साथ इसके उपबंधों और उपधारा (5) जिनमें बीमाकृत व्यक्ति की ओर से बीमा की संविदा के अधीन संदत्त धनराशि वसूल करने के लिए बीमाकर्ता को समर्थ बनाने के लिए इसमें उल्लिखित विनिर्दिष्ट आकस्मिकता आशयित है, का आश्रय अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है और इन्हें ऐसे मामलों में जहां दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के पारस्परिक दावों के न्यायनिर्णयन में विलंब होगा, बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता की प्रतिरक्षाओं और दावों को नियमित न्यायालय में उपचार माना जा सकता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

28. प्रतिपादना संख्या (vi) और (x) से जिनको ऊपर उद्धृत किया गया है, इस निष्कर्ष को समर्थन मिलता है कि वर्तमान मामले में आक्षेपित अधिनिर्णय में अधिकरण द्वारा दिया गया निदेश विधि अनुसार है ।

29. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय पर विचार किया और इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"35. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि पर-व्यक्ति के अधिकार और निजी नुकसान के मामलों के बीच वैचारिक

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

संकल्पनात्मक मतभेदों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । आरंभिक रूप से, यह साबित करने का भार बीमाकर्ता पर होता है कि अनुज्ञप्ति जाली थी । जब एक बार यह साबित हो जाता है तो नैसर्गिक परिणाम उत्पन्न होंगे ।

उपरोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए निम्निलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –

(1) **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय पर-व्यक्ति जोखिम वाले मामलों के अतिरिक्त अन्य मामलों में लागू नहीं होता ।

(2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली थी वहां नवीकरण अन्तर्निहित दोष को दूर नहीं कर सकता है ।

(3) पर-व्यक्ति जोखिम के मामले में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और जहां ऐसा हो, वहां बीमाकृत से उसे वसूल भी किया जा सकता है ।

(4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों को लागू नहीं होती ।

उच्च न्यायालय/आयोग विधि की स्थिति के प्रकाश में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मामले पर नए सिरे से विचार करेंगे ।

अपीलें खर्चों के बारे में कोई आदेश पारित किए बिना उपर्युक्त रूप में स्वीकार की जाती हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

30. उपर्युक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय तृतीय पक्षकार के जोखिम के मामले में लागू होता है और बीमाकर्ता को तृतीय पक्षकार को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और इसके पश्चात् बीमाकृत से इस रकम को वसूल किया जा सकता है ।

31. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**[2] वाले मामले

---

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[2] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट करते हुए **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट किया है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"8. **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के प्रभाव और विवक्षा (तात्पर्य) को नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** लक्ष्मी नारायण दत्त (पूर्वोक्त) वाले मामले में हममें से एक (न्यायमूर्ति डाक्टर अरिजीत पसायत) ने विचार करते हुए स्पष्ट किया है । पैरा 38 में निकाला गया निम्नलिखित निष्कर्ष सुसंगत है –

'38. उपरोक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –

(1) **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों को छोड़कर अन्य किसी मामले में कोई उपयोग नहीं है ।

(2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली है, वहां नवीकरण से अन्तर्निहित दोष दूर नहीं हो सकता ।

(3) तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और यदि ऐसा उपदर्शित किया गया है तो वह बीमाकृत से उसकी वसूली कर सकता है ।

(4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना का अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों में कोई उपयोग नहीं होता ।'

9. ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** मीना वारीयान और अन्य [(2007) 5 एस. सी. सी 428 = 2007 (2) टी. ए. सी. 417] वाले मामले में दिया गया पश्चात्वर्ती विनिश्चय, जो दो

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.)

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया विनिश्चय है, **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों पर विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि किसी ऐसे मामले में जहां कोई व्यक्ति अधिनियम के अर्थांतर्गत तृतीय पक्ष नहीं है, बीमा कंपनी को केवल **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर अपने आप दायी नहीं बनाया जा सकता । ऐसा निष्कर्ष निकालते हुए न्यायालय ने **लक्ष्मी नारायण दत्त** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 38 में उल्लिखित विश्लेषण को उद्धृत किया और उसके साथ सहमति व्यक्त की । हम संगतता को दृष्टि में रखते हुए **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के निर्वचन और प्रयोजनीयता को ध्यान में रखते हुए **लक्ष्मी नारायण दत्त** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धांत को दोहराते हैं ।" (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

32. उपरोक्त विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है, सही और विधिमान्य हैं ।

33. जहां तक श्रीमती अर्चना सिंह द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 3 है) के विरुद्ध संरक्षित होना चाहिए जिससे कि यदि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर की धनराशि नकद रूप में जमा करे तो वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके, इस संबंध में श्री राहुल सहाय द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों का निर्देश करना प्रासंगिक है ।

34. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

"7. अतः हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए **बलजीत कौर** [2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.)] वाले मामले में अभिव्यक्त मत के निबंधनों में यह निदेश करते हैं कि बीमाकर्ता,

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

अधिकरण द्वारा नियत किए गए उस प्रतिकर के परिमाण का आज से तीन मास के भीतर संदाय करेगा जिसके संबंध में प्रत्यर्थियों-दावाकर्ताओं ने कोई विवाद नहीं किया है । बीमाकर्ता से उसे वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता को वाद फाइल करने की आवश्यकता नहीं होगी । वह निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण की विषय-वस्तु से संबंधित विवाद बीमाकर्ता और स्वामी के बीच था और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया है । बीमाकृत को धनराशि निर्मुक्त करने से पहले यान के स्वामी को नोटिस जारी किया जाएगा और उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति दाखिल करने की अपेक्षा की जाएगी जिसका बीमाकर्ता दावाकर्ताओं को संदाय करेगा । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि निष्पादन न्यायालय आवश्यक समझे तो वह संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता ले सकता है । निष्पादन न्यायालय उस रीति के बारे में विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें बीमाकृत यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस मामले में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला होगा कि वह प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या बीमाकृत यान के स्वामी की किसी अन्य संपत्ति या संपत्तियों से वसूलने का निदेश करे । अपील का उपर्युक्त निबंधनों में निपटान किया जाता है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

35. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा**[1] वाले मामले में इस प्रकार अधिकथित किया गया है :–

"प्रश्न यह रहता है कि समुचित निदेश क्या होगा । अधिनियम के फायदा संबंधी उद्देश्य पर विचार करते हुए बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई उत्तरदायित्व न हो । कुछ मामलों में बीमाकर्ता को बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए विकल्प और स्वतंत्रता दी गई है । स्वामी से संदेय धनराशि वसूल करने के प्रयोजन के लिए

[1] 2005 (1) टी. ए. सी. 2 (एस. सी.) = (2004) 8 एस. सी. सी. 517.

बीमाकर्ता से वाद फाइल करने की अपेक्षा नहीं की गई है । वह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण करने के लिए संबंधित विवाद्यक की विषय-वस्तु विवाद्यक बीमाकर्ता और स्वामी के बीच हो और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया हो । दावाकर्ताओं के लिए धनराशि को निर्मुक्त करने से पूर्व दुर्घटना से संबंधित यान का स्वामी उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देगा जो बीमाकर्ता दावेदारों को देगा । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि आवश्यकता हुई तो निष्पादन न्यायालय संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता लेगा । निष्पादन न्यायालय विधि के अनुसार उस रीति के बारे में समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस संबंध में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय यान के स्वामी अर्थात् बीमाकृत की प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से वसूली करने के लिए निदेश देगा । वर्तमान मामले में हम अन्तर्वलित धनराशि की मात्रा पर विचार करते हुए इस विनिश्चय को बीमाकर्ता के विवेक पर छोड़ते हैं कि बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए क्या कदम उठाया जाए ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

36. हमारी राय में, उपरोक्त विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं ।

37. तथापि, हम इस न्यायालय के दोनों विनिश्चयों को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त विनिश्चयों पर विचार किया गया है ।

38. **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यथानिर्दिष्ट उपरोक्त निर्णयज विधि से यह स्पष्ट होता है कि इस तथ्य के बावजूद कि बीमाकर्ता को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के अधीन पालिसी के अन्तर्गत दावाकर्ताओं को प्रतिकर के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है फिर भी इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा विकसित विधि के अधीन संदाय करने का दायित्व बीमा कंपनी को ठहराया गया है । इसके साथ-साथ बीमा कंपनी को भी मोटर यान अधिनियम, 1988 के उपबंधों के भीतर बीमाकृत व्यक्ति से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए और इस प्रयोजन के लिए कोई वाद फाइल करने का भार डाले बिना स्वतंत्रता दी गई है । आरंभतः विधि का यह सिद्धांत **बलजीत कौर** (उपरोक्त) वाले मामले में घोषित किया गया था और इसका संबंधित पक्षकारों द्वारा ऊपर निर्दिष्ट मामले में अनुसरण किया गया है । किन्तु पश्चात्वर्ती मामलों में विशेषतया **नन्जप्पन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि बीमाकृत/यान का स्वामी न्यायालय के समक्ष जमा धनराशि को निर्मुक्त करने से पहले एक सूचना जारी करेगा और उससे उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देने की अपेक्षा की जाएगी जो बीमा कंपनी दावाकर्ताओं को संदाय करेगी । नोटिस के पश्चात् न्यायालय प्रतिभूति के भाग के रूप में दुर्घटना करने वाले यान की कुर्की करने का निदेश कर सकता है और विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित कर सकता है । चूक होने की दशा में न्यायालय के लिए यह विकल्प होगा कि वह प्रतिभूति के निपटान द्वारा बीमाकृत/स्वामी से या यान के स्वामी की किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से धनराशि को सीधे वसूल करने का निदेश कर सकेगा । तथापि, ये सभी तरीके उच्चतम न्यायालय द्वारा बीमाकर्ता द्वारा बीमाकृत से वसूली के लिए उपबंधित किए गए हैं । तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए इन सभी निदेशों का तात्पर्य यह है कि न्यायालय उन दावाकर्ताओं के हित को कम नहीं मानेगा जिनके कल्याण के लिए उच्चतम न्यायालय ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के साथ बीमाकर्ता के दायित्व

---

[1] 2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद).

के अन्यथा निर्वचन द्वारा इन सभी मामलों के माध्यम से इस विधि का विकास किया है । इस प्रकार, वर्तमान मामले में निष्कर्ष यह है कि पुनरीक्षणकर्ता-दावेदारों को तब भी नुकसान न हो जब बीमाकृत/यान का स्वामी प्रतिभूति नहीं देता है या वह न्यायालय के समक्ष उसको जारी किए नोटिस के अनुसरण में हाजिर नहीं होता है । अधिनियम के उपबंधों के भीतर धनराशि वसूल करने का भार उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय में स्वयं बीमाकर्ता पर डाला गया है । इन मामलों में उच्चतम न्यायालय ने दावाकर्ताओं को जिन्होंने अपने पक्ष में अधिनिर्णय प्राप्त किया है, अपने संप्रेक्षण के माध्यम से हानि नहीं होने दी है । इस प्रकार, मामले को उपरोक्त दृष्टि से देखते हुए मेरा यह मत है कि यदि निचला न्यायालय प्रथमतः बीमाकृत/यान के स्वामी को नोटिस जारी करने का निदेश देता है और केवल उसके पश्चात् न्यायालय के समक्ष जमा राशि दावाकर्ताओं के पक्ष में निर्मुक्त की जाती है तो यह न्यायोचित और ठीक होगा ।"

39. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस प्रकार अधिकथित किया है :–

"4. विद्वान् काउंसेल ने यह सिद्ध करने के लिए नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती छल्ला भरथम्मा और अन्य [(2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 2 (एस. सी.)]वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों का उद्धृत किया है कि बीमा कंपनी के दावे को स्वामी द्वारा प्रत्याभूत किया जाना चाहिए । हमारे समक्ष इस प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं है । हम यह कहना चाहते हैं कि जब तक वसूली के प्रयोजन के लिए बीमा कंपनी द्वारा उसी कार्यवाही में कोई समुचित आवेदन नहीं दिया जाता है तब तक स्वामी द्वारा प्रतिभूति प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । ऐसी प्रास्थिति अब परिपक्व हो चुकी है । इस प्रक्रम पर हम केवल दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर का संदाय करने से संबंधित मुद्दे पर विचार कर रहे हैं जिनसे इनकार नहीं किया जा सकता है और जिसका स्वामी तथा बीमा कंपनी के बीच दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है । पीड़ित एक पर-व्यक्ति है । इसके अलावा,

[1] 2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355.

ऐसे निर्णय में, उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अधिनियम के फायदाग्राही उद्देश्य पर विचार करते हुए स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है – 'बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे, भले ही विधि में उसका कोई दायित्व न हो' । प्रभावतः यह अधिनिर्णय के समाधान के लिए एक कामचलाऊ (अन्तरकालीन) प्रबंध है जैसे ही इसे पारित किया जाता है । नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. **बनाम** स्वर्ण सिंह और अन्य [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अपने निर्णय के पैरा 110 में इस प्रकार मत व्यक्त किया कि अधिकरण यह निदेश कर सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर और अन्य धनराशियों के लिए बीमाकृत को प्रतिपूर्ति करने के लिए दायी है जिसके द्वारा उसे अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है । अतः विधान-मंडल का आशय और उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए निर्वचन के आधार पर यह बात सुस्थापित है कि दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर के संदाय से किसी भी परिस्थिति में इनकार नहीं किया जाएगा । हम दोहराते हुए यह भी कह सकते हैं कि इसका स्वामी या बीमाकर्ता के दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है जिस पर उसी मामले में पृथक् आवेदन में या बीमा कंपनी द्वारा प्रस्तुत निष्पादन आवेदन में विचार किया जा सकता है ।"

40. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है ।

41. आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने के लिए अधिकरण के समक्ष समुचित कार्यवाहियां आरंभ करे और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करे ।

42. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1, या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 4) द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे ।

43. अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटाई जाएगी ।

44. उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के अध्यधीन अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की जाती है ।

45. तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चों के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

(2014) 1 सि. नि. प. 319 **कलकत्ता**

कामिनी कपूर

बनाम

पंजाब नेशनल बैंक

तारीख 23 अप्रैल, 2013

न्यायमूर्ति आई. पी. मुखर्जी

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 16 और 116 – पट्टा – संपत्ति का विक्रय – पट्टेदार द्वारा उप-पट्टाकर्ता को भू-स्वामी मानने से इनकार – किराएदार या पट्टेदार या उप-पट्टेदार अपने मकान-मालिक के हक़ से इनकार करने से विबद्ध है यदि वह वस्तुतः या प्रत्यक्षतया मकान-मालिक या पट्टाकर्ता द्वारा दिए गए पट्टे का उपभोग कर लेता है – पट्टेदार पट्टाकर्ता को कब्ज़ा वापस करने के लिए आबद्ध है ।

वादी एक पट्टाकर्ता के अधीन पट्टेदार थी । उसके पास परिसर संख्या

9, इज़रा स्ट्रीट, कोलकाता-700001 के भूतल पर 1510.40 स्कवायर फुट (वर्ग फुट) भूमि थी । प्रतिवादी बैंक वादी का उप-पट्टेदार था । इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि वादी को हस्तांतरित संपत्ति को पट्टे पर देने की शक्ति प्राप्त थी । प्रतिवादी ने वादी को 21,849/- रुपए प्रतिमास की दर से 13 मार्च, 2008 को अंतिम बार किराया संदत्त किया था । आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादी ने प्रतिवादी को यह कहते हुए संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 के अधीन सूचना जारी की कि वह संपत्ति को खाली कर दे और उसे तारीख 15 जुलाई, 2011 तक कब्ज़ा परिदत्त कर दे । प्रतिवादी संपत्ति पर लगातार काबिज़ रहा । उनकी ओर से विद्वान् काउंसेल उपस्थित हुए । उन्होंने दो या तीन मुख्य दलीलें दीं उनमें एक दलील इस न्यायालय की धनीय अधिकारिता से संबंधित थी । वादी का दावा पट्टे के निर्धारण और तारीख 16 जुलाई, 2011 से अतिचार पर आधारित था और तारीख 15 जुलाई, 2011 से कब्ज़े की वापिसी की तारीख तक दो लाख रुपए प्रतिमास की दर से अन्तःलाभों का दावा किया गया था और इसके अतिरिक्त तारीख 1 अप्रैल, 2008 से 15 जुलाई, 2011 तक बकाया किराए के रूप में 8,73,960/- रुपए की डिक्री की मांग की गई थी और इस आधार पर वाद का मूल्यांकन त्रुटिपूर्ण प्रतीत नहीं होता । अतः धनीय अधिकारिता से संबंधित इस दलील में कोई बल नहीं है । किराएदार या पट्टेदार या उप-पट्टेदार अपने मकान-मालिक या पट्टाकर्ता के हक से इनकार करने से विबद्ध है यदि वह वस्तुतः या प्रत्यक्षतया मकान-मालिक या पट्टाकर्ता द्वारा दिए गए पट्टे का उपभोग कर लेता है और उसे ही कब्ज़ा वापिस करना चाहिए जब मुख्य पट्टे की अवधि समाप्त हो गई हो जैसा कि विद्वान् न्यायाधीश ने अपने निर्णय में स्पष्ट मत व्यक्त किया है । (पैरा 4, 5 और 8)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2006] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 376 =
(2006) 1 एस. सी. सी. 650 :
ई. परशुरमण (मृतक) द्वारा **विधिक प्रतिनिधि**
बनाम **दुरईस्वामी (मृतक)** द्वारा **विधिक प्रतिनिधि** ; 10

[2006] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 3569 =
(2006) 3 एस. सी. सी. 91 :
बंसराज लालताप्रसाद मिश्रा बनाम **स्टेनलेय पारकर जोन्स** ; 10

[2002] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 569 :
वासुदेव बनाम **बालकृष्ण** ; 9

[1992] ए. आई. आर. 1992 कलकत्ता 283 :
विट्ठल भाई प्राइवेट लिमिटेड बनाम
यूनियन बैंक ऑफ इंडिया । 7

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की जी. ए. संख्या 1894.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण आवेदन ।

याची की ओर से सर्वश्री जिशनू साहा, अशीष कुमार मुखर्जी और (सुश्री) सुलगना मुखर्जी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री शंकर सिंह और सुश्री पिंकी खुशवाल

न्यायमूर्ति आई. पी. मुखर्जी – वादी एक पट्टाकर्ता के अधीन पट्टेदार थी । उसके पास परिसर संख्या 9, इज़रा स्ट्रीट, कोलकाता-700001 के भूतल पर 1510.40 स्कवायर फुट (वर्ग फुट) भूमि थी । प्रतिवादी बैंक वादी का उप-पट्टेदार था । इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि वादी को हस्तांतरित संपत्ति को पट्टे पर देने की शक्ति प्राप्त थी । प्रतिवादी ने वादी को 21,849/- रुपए प्रतिमास की दर से 13 मार्च, 2008 को अंतिम बार किराया संदत्त किया था ।

2. इसके पश्चात् पट्टाकर्ता ने क्रेता को संपत्ति विक्रीत कर दी । प्रतिवादी ने इसके तुरंत पश्चात् क्रेता से एक करार किया और उसने उक्त करार के अधीन संपत्ति का अधिभोग करना आरंभ कर दिया । यह नया प्रबंध तारीख 1 अगस्त, 2010 को या उसके आस-पास हुआ था ।

3. प्रतिवादी बैंक का यह कथन था कि वादी का मुख्य पट्टा तारीख 13 नवंबर, 2002 को समाप्त हो गया था । बैंक ने यह समझा कि अब वादी का संपत्ति से कोई संबंध नहीं रहा था ।

4. वादी ने प्रतिवादी को यह कहते हुए संपत्ति अंतरण अधिनियम,

1882 की धारा 106 के अधीन सूचना जारी की कि वह संपत्ति को खाली कर दे और उसे तारीख 15 जुलाई, 2011 तक कब्ज़ा परिदत्त कर दे । प्रतिवादी संपत्ति पर लगातार काबिज़ रहा ।

5. उनकी ओर से विद्वान् काउंसेल उपस्थित हुए । उन्होंने दो या तीन मुख्य दलीलें दीं उनमें एक दलील इस न्यायालय की धनीय अधिकारिता से संबंधित थी । वादी का दावा पट्टे के निर्धारण और तारीख 16 जुलाई, 2011 से अतिचार पर आधारित था और तारीख 15 जुलाई, 2011 से कब्ज़े की वापिसी की तारीख तक दो लाख रुपए प्रतिमास की दर से अन्तः लाभों का दावा किया गया था और इसके अतिरिक्त तारीख 1 अप्रैल, 2008 से 15 जुलाई, 2011 तक बकाया किराए के रूप में 8,73,960/- रुपए की डिक्री की मांग की गई थी और इस आधार पर वाद का मूल्यांकन त्रुटिपूर्ण प्रतीत नहीं होता । अतः धनीय अधिकारिता से संबंधित इस दलील में कोई बल नहीं है ।

6. द्वितीयतः यह दलील दी गई है कि वादी को संपत्ति पर कोई हक और हित प्राप्त नहीं है । इस संबंध में निम्नलिखित चर्चा की जा रही है ।

चर्चा

7. वादी की विद्वान् काउंसेल सुश्री सुलगना मुखर्जी ने प्रथमतः मेरा ध्यान वर्ष 1992 में इस न्यायालय के न्यायमूर्ति अजय नाथ राय द्वारा दिए गए विनिश्चय की ओर दिलाया है । यह विनिश्चय **विट्ठल भाई प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **यूनियन बैंक ऑफ इंडिया**[1] वाले मामले का विनिश्चय है ।

8. किराएदार या पट्टेदार या उप-पट्टेदार अपने मकान-मालिक या पट्टाकर्ता के हक से इनकार करने से विबद्ध है यदि वह वस्तुतः या प्रत्यक्षतया मकान-मालिक या पट्टाकर्ता द्वारा दिए गए पट्टे का उपभोग कर लेता है और उसे ही कब्ज़ा वापिस करना चाहिए जब मुख्य पट्टे की अवधि समाप्त हो गई हो जैसा कि विद्वान् न्यायाधीश ने अपने निर्णय में स्पष्ट मत व्यक्त किया है । यहां मैं निर्णय के कतिपय पैरों को उद्धृत करना चाहता हूं, जो इस प्रकार हैं :–

> "5. इस वाद में विवाद्यक यह है कि क्या इस वाद में प्रतिवादी के समान कोई उप-पट्टेदार इस आधार पर अपने अव्यवहित मकान-मालिक द्वारा दिए गए कब्ज़े के लिए दावे का विरोध कर सकता है

[1] ए. आई. आर. 1992 कलकत्ता 283.

कि उसके मकान-मालिक ने उस पट्टे के अधीन कब्ज़े का हक या अधिकार खो दिया है जिसके द्वारा अव्यवहित मकान-मालिक मूल रूप से संपत्ति धारित कर रहा था

6. मेरे मतानुसार नज़ीरों द्वारा और विधि के कठोर सिद्धांतों द्वारा यह बिन्दु सुस्थापित है । जहां तक किराएदार के रूप में उसके दावे का संबंध है किसी किराएदार को ऐसे मकान-मालिक के हक को विवादित करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया गया है जिससे उसे किराएदारी और कब्ज़ा प्राप्त हुआ था । यह विबंधन का एक नियम है जिसे साक्ष्य अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अधिनियमित किया गया है । इस आधार पर कोई अतिचारी मकान-मालिक भी अपने किराएदार के विरुद्ध बेदखली के लिए वाद ला सकता है और किराएदार इस बात के लिए स्वतंत्र नहीं होगा कि वह किसी भी रीति में मकान-मालिक के हक को चुनौती दे । इस सुस्थापित नियम का कारण आसानी से समझा जा सकता है । किराएदार को मकान-मालिक के द्वारा कब्ज़ा दिया गया है । अतः वह उस व्यक्ति को कब्ज़ा सुपुर्द करेगा जिससे उसने मूल रूप से कब्जा प्राप्त किया है और इस संबंध में कोई अभिवाक् या बाधा उत्पन्न नहीं करेगा ।

9. वादी की ओर से उपस्थित श्री सिन्हा के साथ श्री कपूर ने इस संबंध में दो मामलों का अवलंब लिया है । ये मामले **भयगन्ता बेबा** (ए. आई. आर. 1917 कलकत्ता 498) वाला मामला और **कृष्ण राव** (ए. आई. आर. 1932 मद्रास 298) वाला मामला है । मेरे मतानुसार उपर्युक्त दोनों नज़ीरों के आधार पर यह ठीक ही दलील दी गई है कि विधि की सही प्रतिपादना यह है कि किसी किराएदार के विरुद्ध यह विबंध है कि वह तब तक मकान-मालिक के हक को चुनौती देने से निवारित है जब तक कि किराएदार हस्तांतरित परिसर पर वास्तविक रूप से निरंतर काबिज़ है । यह विबंधन प्रश्नगत अव्यवहित मकान-मालिक का मुख्य पट्टा चालू न रहने पर भी समाप्त नहीं हो सकता । श्री कपूर ने यह दलील दी कि मद्रास उच्च न्यायालय की नज़ीर के आधार पर यह उपदर्शित होता है कि कोई मकान-मालिक अपने किराएदार के विरुद्ध कब्ज़े के लिए कार्यवाही कर सकता है यदि उस समय स्वयं मकान-मालिक अपने उच्चतर मकान-मालिक द्वारा अव्यवहित मकान-मालिक के विरुद्ध कब्ज़ा प्राप्त करने के लिए किसी डिक्री के संबंध में पहले से ही निर्णीतऋणी हो ।"

9. उच्चतम न्यायालय ने **वासुदेव** बनाम **बालकृष्ण**[1] वाले मामले में इस विषय पर अपनी नज़ीर देते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "6. .....संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 108 के खण्ड (थ) के अधीन किसी संविदा या प्रतिकूल स्थानीय प्रथा के अभाव में किराएदार इस दायित्व के अधीन है कि वह पट्टे की समाप्ति पर संपत्ति का कब्ज़ा अपने पट्टाकर्ता को प्रदान करे । साक्ष्य अधिनियम की धारा 116 जो मकान-मालिक और किराएदार के बीच विबंधन के सामान्य विधिक नियम को संहिताबद्ध करती है, यह उपबंध करती है कि स्थावर संपत्ति के किसी भी अभिधारी को या ऐसे अभिधारी से व्युत्पन्न अधिकार से दावा करने वाले व्यक्ति को, ऐसी अभिधृति के चालू रहते हुए इसका प्रत्याख्यान न करने दिया जाएगा कि ऐसे अभिधारी के भू-स्वामी का ऐसी स्थावर संपत्ति पर, उस अभिधृति के आरंभ पर हक था । यथा उपबंधित विबंधन के सिद्धांत के तीन मुख्य लक्षण हैं – (i) किराएदार को अभिधृति के आरंभ से ही अभिधृति परिसर के ऊपर अपने मकान-मालिक के हक को विवादित करने से विबंधित किया गया है ; (ii) ऐसा विबंधन तक तक चालू रहता है जब तक कि अभिधृति चालू रहती है और जब तक कि किराएदार मकान-मालिक को कब्ज़े का प्रत्यर्पण नहीं कर देता है ; और (iii) साक्ष्य अधिनियम की धारा 116 भू-स्वामी और किराएदार के बीच विबंधन की संपूर्ण विधि नहीं है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 116 से व्युत्पन्न सिद्धांत की विवक्षा को विस्तारित किया जा सकता है और इसका किसी वैयक्तिक मामले की अपेक्षा के वाद के लिए उपयुक्त रूप से अनुसरण किया जा सकता है । विबंधन का नियम जिसमें किसी स्थावर संपत्ति का स्वामी और उसका किराएदार भी आता है, किसी किराएदार या उप-किराएदार की आपसी नातेदारी में भी यथावश्यक परिवर्तन सहित लागू होता है । जैसा कि प्रिवी कौंसिल ने कुरिम्भो एण्ड कम्पनी लिमिटेड **बनाम** एल. ए. क्रीट (ए. आई. आर. 1993 पी. सी. 29) और बिलास कुंवर **बनाम** देसराज रंजीत सिंह (ए. आई. आर. 1915 पी. सी. 96) वाले मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है कि विबंधन तब तक चालू रहता है जब तक कि किराएदार पूर्ण रूप से अपने भू-स्वामी का कब्ज़ा समर्पित

---

[1] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 569.

नहीं कर देता ।

10. इस सिद्धांत का **ई. परशुरमण (मृतक)** द्वारा **विधिक प्रतिनिधि** बनाम **दुरईस्वामी (मृतक)** द्वारा **विधिक प्रतिनिधि**[1] और **बंसराज लालताप्रसाद मिश्रा** बनाम **स्टेनलेय पारकर जोन्स**[2], वाले मामलों में अनुसरण किया गया है ।

11. पट्टा तारीख 15 जुलाई, 2011 को समाप्त हो गया था ।

12. अतः प्रतिवादी किसी संरक्षण का हकदार नहीं है । वादी के दावे के संबंध में किसी प्रकार की प्रतिरक्षा नहीं की गई है ।

13. यह आवेदन, मास्टर समनों के निबंधन (क) में आदेश पारित करते हुए मंजूर किया जाता है ।

14. वादी द्वारा यथा दावा किए गए अन्तःलाभों के दावे को विशेष मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाता है । बार लाइब्रेरी क्लब के सदस्य श्री अमिताभ घोष, अधिवक्ता को प्रत्येक बैठक पर 350/- रुपए जी.एम. के. पारिश्रमिक पर वादी को कब्ज़े के परिदान तक या उस तारीख से 3 वर्षों तक जो भी पूर्वतर हो, संदेय अंतःलाभों का अवधारण करने के लिए विशेष मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जाता है । विशेष मध्यस्थ की रिपोर्ट इस आदेश की प्रति की तामील की तारीख से 6 मास के भीतर फाइल की जाएगी । वाद उपर्युक्त सीमा तक भागतः डिक्री किया जाता है । विभाग को शीघ्रतापूर्वक डिक्री बनाने के लिए आदेश किया जाता है ।

15. शेष दावा विचारण में निर्धारित किया जाएगा । सभी अपेक्षित औपचारिकताएं पूरी करने के अध्यधीन इस निर्णय/आदेश की प्रमाणित फोटो प्रति पक्षकारों द्वारा आवेदन करने पर उन्हें तुरंत प्रदत्त की जाए ।

आवेदन मंजूर किया गया ।

मह.

---

[1] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 376 = (2006) 1 एस. सी. सी. 650.

[2] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 3569 = (2006) 3 एस. सी. सी. 91.

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

मोहम्मद मक़बूल खताना और अन्य

तारीख 26 जुलाई, 2013

न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा यान चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति न होने का आक्षेप – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां बीमा कंपनी ने यह आक्षेप उठाया हो कि बीमाकृत यान के चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी वहां भी वह आहत व्यक्ति को प्रतिकर की रकम का संदाय करने के दायित्वाधीन होगी – तथापि, वह संदत्त धनराशि को बीमाकृत यान के स्वामी से वसूल करने की हकदार होगी ।

मास्टर अब्दुल माजिद खताना की जो कि 14/15 वर्ष का जवान लड़का था, एक यान दुर्घटना में मृत्यु हो गई । इस यान की रजिस्ट्रीकरण सं. जे के 01-2247 है । यह घटना मदीन साहिब, हवल चौक पर हुई थी । उसके माता-पिता ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, श्रीनगर के समक्ष मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन दावा याचिका फाइल की थी । इस दावा याचिका में उन्होंने यह अभिवचन किया कि दुर्घटना कारित करने वाला यान इसके चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाया जा रहा था, जब यान ने उसके पुत्र को टक्कर मारी जो कि एक साइकिल पर था । यह प्रकथन किया गया था कि दुर्घटना की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुलिस थाना, लाल बाजार में धारा 279 और 304-क के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मामला सं. 50/2005 के रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई थी । मृतक के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिकर हेतु दावा प्रस्तुत किया गया था । अधिकरण ने दावा मंजूर करते हुए 3,85,000/- रुपए प्रतिकर के रूप में अधिनिर्णीत किया जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा यह अपील फाइल की गई । अपील का तद्नुसार निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सुस्थापित विधि है कि बीमा कंपनी बीमाकृत यान के दुर्घटना में अन्तर्वलन के आधार पर दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी को क्षतिपूर्ति करने के दायित्व से तभी बच सकती है जब वह यह साबित कर दे कि जब बीमाकृत व्यक्ति या स्वामी द्वारा चालक को नियोजित किया गया था तब दुर्घटना के समय उसके पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । बीमाकृत व्यक्ति किसी भी दशा में बीमा संविदा के भंग का दोषी होगा जहां उसने यान को चलाने के लिए अपना यान अप्राधिकृत व्यक्ति के सुपुर्द किया है । यह नहीं माना जा सकता कि बीमा कंपनी का यह साबित करने का कर्तव्य है कि स्वामी को चालन अनुज्ञप्ति की कमी के संबंध में जानकारी थी या दुर्घटना करने वाले यान के चालक द्वारा धारित चालन अनुज्ञप्ति निष्प्रभावी और अविधिमान्य थी । बीमा कंपनी के लिए यह संभव नहीं है कि वह यान के स्वामी की जानकारी या समझ पर आधारित किसी तथ्य को साबित करे । यह साबित करना यान के स्वामी का कर्तव्य है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि दुर्घटना करने वाले यान के चालक द्वारा धारित चालन अनुज्ञप्ति निष्प्रभावी थी या अविधिमान्य थी और उसने यह सुनिश्चित करने के लिए साधारण समझ के किसी व्यक्ति से प्रत्याशित सभी कदम उठाए थे कि चालक द्वारा जिसको वह अपना यान सुपुर्द कर रहा था, धारित चालन अनुज्ञप्ति निष्प्रभावी थी और अविधिमान्य थी और उसने किसी सद्भाविक रीति में ऐसी अनुज्ञप्ति के प्रभावी होने या विधिमान्य होने के संबंध में विश्वास किया था । यद्यपि वर्तमान मामले में यान के स्वामी को दावा याचिका का विरोध करने के लिए अवसर दिया गया था, तथापि, उसने अधिकरण के समक्ष या इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना और यह अभिवाक् करना पसंद नहीं किया कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी उस चालक के पास जिसे उसने अपना यान सुपुर्द किया था, एक विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । जब एक बार यान के स्वामी ने ऐसा कोई प्रकथन करना पसंद नहीं किया तो अधिकरण के लिए यह उचित नहीं था कि वह यह निष्कर्ष निकाले कि दुर्घटना से संबंधित यान का स्वामी यह बात नहीं जानता था कि दुर्घटना करने वाले यान के चालक के पास निष्प्रभावी या अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी । अधिकरण यह साबित करने का भार बीमा कंपनी पर डालने में उचित नहीं था कि दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी को इस बात की जानकारी थी कि दुर्घटना करने वाले यान के पास प्रभावी और विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी । ऐसे किसी मामले में इस बात को साबित

करने का भार सदैव स्वामी पर जाता है कि उसने दुर्घटना करने वाले यान के चालक को नियोजित करते समय साधारण समझ के व्यक्ति के रूप में कार्य किया था । इसे दृष्टिगत करते हुए अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 5 के बारे में निकाला गया निष्कर्ष तथ्यों और विधि के सही मूल्यांकन पर आधारित नहीं है और तद्नुसार इसे अपास्त किया जाता है । उपर्युक्त विवेचित कारणों से अपीलार्थी इस संविदात्मक दायित्व के अधीन नहीं है कि वह दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी की क्षतिपूर्ति करे और अधिकरण द्वारा निर्धारित प्रतिकर दावेदार प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को यान का स्वामी संदत्त करे । तथापि, बीमा कंपनी ने पहले ही कार्यालय में प्रतिकर की धनराशि जमा कर दी है और इसके कुछ भाग का प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को संदाय किया जा चुका है । प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 पिछले 8 वर्षों से मामले का अभियोजन कर रहे हैं । वे समाज के निचले तबक़े के व्यक्ति हैं और इसलिए उनसे इतने लंबे समय के पश्चात् निर्धारित प्रतिकर की वसूली के लिए यान के स्वामी को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । इसके प्रतिकूल बीमा कंपनी दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी से अधिनिर्णय के निबंधनों में स्वयं द्वारा संदत्त धनराशि वसूल करने की बेहतर स्थिति में है । (पैरा 9, 10, 11,12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2011] 2011 ए. सी. जे. 917 :
यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड
बनाम **के. एम. पूनम और अन्य ;** 13

[2005] 2005 (1) ए. सी. जे. 604 (एस. सी.) :
मंजू देवी और अन्य बनाम **मुसाफिर पासवान** । 7,8

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की सी. आई. एम. ए. सं. 63 और 2010 का अंतरिम आवेदन सं. 239.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री जे. ए. कावूसा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री जे. एच. ऋषि

न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी – मास्टर अब्दुल माजिद खताना की जो कि 14/15 वर्ष का जवान लड़का था, एक यान दुर्घटना में मृत्यु हो गई । इस यान की रजिस्ट्रीकरण सं. जे के 01-2247 है । यह घटना मदीन साहिब, हवल चौक पर हुई थी । उसके माता-पिता ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, श्रीनगर के समक्ष मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन दावा याचिका फाइल की थी । इस दावा याचिका में उन्होंने यह अभिवचन किया कि दुर्घटना कारित करने वाला यान इसके चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाया जा रहा था, जब यान ने उसके पुत्र को टक्कर मारी जो कि एक साइकिल पर था । यह प्रकथन किया गया था कि दुर्घटना की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुलिस थाना, लाल बाजार में धारा 279 और 304-क के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मामला सं. 50/2005 के रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई थी ।

2. यद्यपि दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी और चालक पर सम्यक्तः तामील की गई किंतु दावा याचिका का विरोध करने के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ ।

3. अधिकरण ने अभिवचनों का परिशीलन करने के पश्चात् निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

> "1. क्या जब तारीख 5 सितंबर, 2005 को मृतक अब्दुल माजिद खताना मदीन साहिब, हवल चौक में सड़क पर बाईं ओर अपनी साइकिल पर यात्रा कर रहा था तो उसे एक टिपर द्वारा जिसकी रजिस्ट्रीकरण सं. जे के 01-2247 थी और जिसे प्रत्यर्थी सं. 3 उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चला रहा था, हवल से लाल बाजार जाने वाली सड़क पर टक्कर मारी, जिसके परिणामस्वरूप उसे गंभीर क्षतियां पहुंचीं और अस्पताल के रास्ते में उसकी मृत्यु हो गई ? ओ. पी. पी. ।
>
> 2. यदि विवाद्यक सं. 1 सकारात्मक रूप में साबित होता है तो क्या आवेदक विधिक प्रतिनिधियों के रूप में मृतक की मृत्यु होने के कारण प्रतिकर पाने के हकदार हैं, यदि हां तो कितने परिमाण में और किससे ? ओ. पी. पी. ।
>
> 3. क्या मृतक मुख्य सड़क की गलत तरफ साइकिल सीख रहा था और उसकी स्वयं की उपेक्षा के कारण साइकिल यान के बम्पर से

टकरा गई और उसे क्षतियां पहुंचीं और इसलिए आवेदक मृतक की मृत्यु के लिए प्रतिकारित किए जाने के लिए हकदार नहीं हैं ? ओ. पी. आर. 3 ।

4. क्या यान के स्वामी प्रत्यर्थी सं. 1 की मृत्यु हो गई है और क्या आवेदक उसके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने में विफल रहे हैं और इसलिए वर्तमान रूप में दावा याचिका ग्राह्य नहीं है ?

5. क्या दुर्घटना करने वाले यान के चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी और इसलिए कंपनी दुर्घटना के कारण किसी दायित्व के लिए स्वामी को क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी नहीं है ? ओ. पी. आर. 1 ।

6. अनुतोष ।'

4. पक्षकारों ने विवाद्यकों पर अपने उस भार का निर्वहन करने के लिए साक्ष्य पेश किया जो कि उनके ऊपर था । अधिकरण ने सभी विवाद्यक दावेदारों के हक में विनिश्चित किए और 3,85,000/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जो कि बीमा कंपनी द्वारा दावेदारों को संदेय है । अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि दुर्घटना करने वाले यान का चालक विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति के बिना यान चला रहा था, बीमा कंपनी को प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी माना क्योंकि वह यह तथ्य साबित करने में विफल रही कि यह बात यान के स्वामी की जानकारी में थी कि चालन अनुज्ञप्ति निष्प्रभावी थी और दुर्घटना, दुर्घटना करने वाले यान के चालक की निष्प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति से संबंधित थी ।

5. बीमा कंपनी ने वर्तमान सिविल प्रथम प्रकीर्ण अपील में तारीख 18 जुलाई, 2009 के निर्णय को इस आधार पर प्रश्नगत किया है कि स्वामी की क्षतिपूर्ति करने का दायित्व गलत रूप से बीमा कंपनी पर डाला गया है और अधिनिर्णीत किया गया प्रतिकर अत्यधिक है ।

6. मैंने अपील और आक्षेपित अधिनिर्णय का गहन परिशीलन किया और पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

7. अधिकरण ने हमारे समक्ष के दावेदार-प्रत्यर्थियों की आय के नुकसान की संगणना करते हुए मृतक की आयु 16 वर्ष के रूप में मानते हुए 15 का गुणक लागू किया है और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की आयु को

दृष्टिगत करते हुए तथा यह उपधारित करते हुए कि मृतक अपने छोटे कुटुंब के लिए 24,000/- रुपए वार्षिक की धनराशि कमा सकता था, 24,000 x 15 = 3,60,000/- रुपए प्रतिकर संगणित किया । अधिकरण ने संपदा के नुकसान के लिए 24,000/- रुपए और दाह संस्कार के रूप में 5,000/- रुपए भी जोड़ा । तद्नुसार कुल प्रतिकर 3,85,000/- रुपए अवधारित किया गया और इस प्रकार धनराशि का निर्धारण करते हुए उस पर परिवाद फाइल करने की तारीख से धनराशि की अंतिम वसूली तक 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज लगाने का भी निदेश दिया । अधिकरण ने मृतक द्वारा अपने माता-पिता के लिए 24,000/- रुपए वार्षिक अभिदाय नियत करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **मंजू देवी और अन्य** बनाम **मुसाफिर पासवान**[1] वाले मामले में अधिकथित विधि और इस तथ्य का अवलंब लिया कि चूंकि मृतक अपने माता-पिता का सबसे बड़ा पुत्र था और कठोर परिश्रम करता था इसलिए वह अपने नातेदारों के लिए अपना घर चलाने सहित अपने और अपने माता-पिता की सहायता करते हुए अपना दायित्व निभा सकता था ।

8. यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अभिलेख पर के साक्ष्य से यह साबित होता है कि मृतक एक होटल में 5,000/- रुपए मासिक वेतन पर कार्य करता था । प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने इस संबंध में होटल के स्वामी मोहम्मद अमीन की परीक्षा की है । तथापि, अधिकरण ने इस प्रकार प्रस्तुत साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया और उसके बजाय **मंजू देवी और अन्य** बनाम **मुसाफिर पासवान**[1] वाले मामले में अधिकथित विधि का अवलंब लिया । अधिकरण द्वारा 15 का गुणक लागू करने और मृतक द्वारा अपना घर-बार चलाने के लिए अपने माता-पिता को 24,000/- रुपए वार्षिक सहायता करने के संबंध में अधिकरण द्वारा दिए गए तर्कों में कोई दोष प्रतीत नहीं होता है । यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि अधिकरण ने यह निष्कर्ष नहीं निकाला कि मृतक की 2,000/- रुपए प्रतिमास की आय थी । इसके बजाय अधिकरण ने मृतक द्वारा कुटुम्ब की निधि के लिए उसकी आय से अभिदाय होने पर अधिक बल दिया । प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील में कि निर्धारित प्रतिकर बहुत कम है और अधिकरण को उच्चतर गुणक लागू करते हुए आय संगणित करनी चाहिए थी, कोई बल नहीं है । प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी

---

[1] 2005 (1) ए. सी. जे. 605 (एस. सी.).

गई इस दलील की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि इस अपील न्यायालय को भी प्रति अपील के अभाव में मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन दावा याचिका में दावेदारों द्वारा मांगे गए अनुतोष को मंजूर करना चाहिए था, जहां यह पाया जाए कि निर्धारित प्रतिकर मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 168 के अर्थान्तर्गत ''न्यायोचित प्रतिकर'' होने के कारण इसमें हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

9. यह सुस्थापित विधि है कि बीमा कंपनी बीमाकृत यान के दुर्घटना में अन्तर्वलन के आधार पर दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी को क्षतिपूर्ति करने के दायित्व से तभी बच सकती है जब वह यह साबित कर दे कि जब बीमाकृत व्यक्ति या स्वामी द्वारा चालक को नियोजित किया गया था तब दुर्घटना के समय उसके पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । बीमाकृत व्यक्ति किसी भी दशा में बीमा संविदा के भंग का दोषी होगा जहां उसने यान को चलाने के लिए अपना यान अप्राधिकृत व्यक्ति के सुपुर्द किया है । यह नहीं माना जा सकता कि बीमा कंपनी का यह साबित करने का कर्तव्य है कि स्वामी को चालन अनुज्ञप्ति की कमी के संबंध में जानकारी थी या दुर्घटना करने वाले यान के चालक द्वारा धारित चालन अनुज्ञप्ति निष्प्रभावी और अविधिमान्य थी । बीमा कंपनी के लिए यह संभव नहीं है कि वह यान के स्वामी की जानकारी या समझ पर आधारित किसी तथ्य को साबित करे । यह साबित करना यान के स्वामी का कर्तव्य है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि दुर्घटना करने वाले यान के चालक द्वारा धारित चालन अनुज्ञप्ति निष्प्रभावी थी या अविधिमान्य थी और उसने यह सुनिश्चित करने के लिए साधारण समझ के किसी व्यक्ति से प्रत्याशित सभी कदम उठाए थे कि चालक द्वारा जिसको वह अपना यान सुपुर्द कर रहा था, धारित चालन अनुज्ञप्ति निष्प्रभावी थी और अविधिमान्य थी और उसने किसी सद्भाविक रीति में ऐसी अनुज्ञप्ति के प्रभावी होने या विधिमान्य होने के संबंध में विश्वास किया था ।

10. यद्यपि वर्तमान मामले में यान के स्वामी को दावा याचिका का विरोध करने के लिए अवसर दिया गया था । तथापि, उसने अधिकरण के समक्ष या इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना और यह अभिवाक् करना पसंद नहीं किया कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि उस चालक के पास जिसे उसने अपना यान सुपुर्द किया था, एक विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । जब एक बार यान के स्वामी ने ऐसा

कोई प्रकथन करना पंसद नहीं किया तो अधिकरण के लिए यह उचित नहीं था कि वह यह निष्कर्ष निकाले कि दुर्घटना से संबंधित यान का स्वामी यह बात नहीं जानता था कि दुर्घटना करने वाले यान के चालक के पास निष्प्रभावी या अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी ।

11. अधिकरण यह साबित करने का भार बीमा कंपनी पर डालने में उचित नहीं था कि दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी को इस बात की जानकारी थी कि दुर्घटना करने वाले यान के पास प्रभावी और विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी । ऐसे किसी मामले में इस बात को साबित करने का भार सदैव स्वामी पर जाता है कि उसने दुर्घटना करने वाले यान के चालक को नियोजित करते समय साधारण समझ के व्यक्ति के रूप में कार्य किया था ।

12. इसे दृष्टिगत करते हुए अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 5 के बारे में निकाला गया निष्कर्ष तथ्यों और विधि के सही मूल्यांकन पर आधारित नहीं है और तद्नुसार इसे अपास्त किया जाता है ।

13. उपर्युक्त विवेचित कारणों से अपीलार्थी इस संविदात्मक दायित्व के अधीन नहीं है कि वह दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी की क्षतिपूर्ति करे और अधिकरण द्वारा निर्धारित प्रतिकर दावेदार प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को यान का स्वामी संदत्त करे । तथापि, बीमा कंपनी ने पहले ही कार्यालय में प्रतिकर की धनराशि जमा कर दी है और इसके कुछ भाग का प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को संदाय किया जा चुका है । प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 पिछले 8 वर्षों से मामले का अभियोजन कर रहे हैं । वे समाज के निचले तबके के व्यक्ति हैं और इसलिए उनसे इतने लंबे समय के पश्चात् निर्धारित प्रतिकर की वसूली के लिए यान के स्वामी को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । इसके प्रतिकूल बीमा कंपनी दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी से अधिनिर्णय के निबंधनों में स्वयं द्वारा संदत्त धनराशि वसूल करने की बेहतर स्थिति में है । इस उपाय का अर्थात् ''संदत्त और वसूली'' के सिद्धान्त की उच्चतम न्यायालय द्वारा **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **के. एम. पूनम और अन्य**[1] वाले मामले सहित अनेक मामलों में दिए गए निर्णयों से पुष्टि होती है ।

14. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए तारीख 18 जुलाई, 2009 के अधिनिर्णय को निम्नलिखित रूप में उपांतरित किया जाता है :–

---

[1] 2011 ए. सी. जे. 917.

"अपीलार्थी-बीमा कंपनी दावेदारों को, संदत्त धनराशि को यान के स्वामी से वसूल करने के अधिकार के साथ 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित 3,85,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करेगी ।"

15. तद्नुसार इस सिविल प्रकीर्ण प्रथम अपील का निपटान किया जाता है ।

अपील का तद्नुसार निपटान किया गया ।

मह.

(2014) 1 सि. नि. प. 334 **मध्य प्रदेश**

मुमताज़ुल करीम

बनाम

श्रीमती विक़ारूननिसा

तारीख 28 फरवरी, 2013

न्यायमूर्ति ए. के. श्रीवास्तव

मुस्लिम विवाह-विघटन अधिनियम, 1939 (1939 का 8) – धारा 2 (viii)(क) और (च) – विवाह-विघटन – पति के कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा क्रूरता – पति द्वारा पत्नी की प्रतिरक्षा न करना – पति द्वारा दूसरा विवाह – पति द्वारा पहली पत्नी के साथ दूसरी पत्नी के समान व्यवहार न करना – पति का व्यवहार क्रूरता की श्रेणी में आता है – पत्नी इन आधारों पर विवाह-विघटन की डिक्री के लिए हकदार है ।

प्रतिवादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन यह प्रथम अपील सी. एस. 11-ए/1993 में विद्वान् जिला न्यायाधीश, सियोनी द्वारा तारीख 8 मार्च, 1996 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यद्यपि प्रतिवादी की डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में परीक्षा की गई है और उसने अपने परिसाक्ष्य में उन सभी अभिकथनों से जो उसके विरुद्ध किए गए हैं, इनकार किया है । तथापि, न्यायालय के मतानुसार वादी और उसके साक्षियों का साक्ष्य अधिक विश्वसनीय है और इसलिए विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह ठीक ही

निष्कर्ष निकाला है कि वादी का साक्ष्य अधिक विश्वसनीय है । यह सुस्थापित है कि जहां साक्षियों के कथनों के आधार पर दो मत संभव हों, सामान्यतया अपील न्यायालय द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत को जब तक वह साक्ष्य से पूर्णतया असंभव न हो, स्वीकार किया जाना चाहिए । तथ्यात्मक पहलू और साक्ष्य की जो अभिलेख पर पेश किया गया है, परीक्षा करने पर और धारा 2(viii)(क) के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि क्रूर आचरण के क्षेत्र को संकुचित अर्थ में नहीं लिया जा सकता । मात्र इस कारण कि प्रतिवादी ने वादी पर कभी भी हमला नहीं किया या मार-पीट नहीं कि, यह नहीं कहा जा सकता कि उसने कोई क्रूरता नहीं बरती है । न्यायालय के मतानुसार वादपत्र के पैरा 4-क और 4-ख में वादी द्वारा यह अभिवाक् किया गया है कि उसके प्रति प्रतिवादी का व्यवहार क्रूरतापूर्ण था और वह (उसका पति) भी उसके साथ मार-पीट करता था । उसने अपने इस अभिवाक् को अपने परिसाक्ष्य द्वारा भी साबित किया है जिस पर न्यायालय ने ऊपर विचार किया है । इसके अतिरिक्त वादी का इस आशय का प्रभावी साक्ष्य भी मौजूद है कि उसका पति (प्रतिवादी) और उसके कुटुंब के सदस्य उसके साथ दुर्व्यवहार करते थे और उसके साथ मार-पीट करते थे किंतु वह (उसका पति) कभी भी उसका बचाव नहीं करता था । न केवल इतना जब कभी उसका (पति का) बहनोई उसकी ससुराल आता था, उसके बारे में मिथ्या शिकायतें करता था और उसे मां-बहन की गालियां देता था । यह उल्लेखनीय है कि वादी ने जो कि एक महिला है, इस प्रकार का साक्ष्य देते हुए अपनी लज्जा तथा स्त्री की अस्मिता को ध्यान में रखते हुए यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसके पति का बहनोई जिस प्रकार गालियां देता था, वह खुले न्यायालय में नहीं बता सकती । अतः यह न्यायालय इस बारे में निष्कर्ष निकाल सकता है कि ये गालियां कितनी घृणित होंगी जो प्रतिवादी का बहनोई वादी को देता था । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उसका बहनोई उसके पति (प्रतिवादी) की उपस्थिति में इस प्रकार की गालियां देता था इसलिए न्यायालय का यह मत है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी का आचरण 1939 को अधिनियम की धारा 2 के खण्ड (viii)(क) की परिधि और व्याप्ति के अंतर्गत आता है । अतः प्रश्न सं. 1 अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है और विद्वान् विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष की कि प्रतिवादी वादी के प्रति क्रूरता का व्यवहार करता था, एतद्द्वारा पुष्टि की जाती है । तथ्यतः वादी के साक्ष्य से यह तथ्य भी साबित हो गया है कि वादी के साथ उस रीति में व्यवहार नहीं किया जाता है जो प्रतिवादी अपनी दूसरी पत्नी

के साथ करता है और जिस प्रकार अपनी दूसरी पत्नी के साथ प्रेम और स्नेह का व्यवहार करता है जिसके लिए कोई पत्नी अपने पति से पाने की हकदार है । यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वादी प्रतिवादी से 8 वर्षों तक पृथक् रहने के बावजूद वह उसे भरणपोषण की राशि नहीं भेजता था । प्रतिवादी ने यह भी स्वीकार किया है कि वह अपने आवास पर अपनी दूसरी पत्नी को रखकर समुचित रूप से भरणपोषण करता है । वादी का प्रतिवादी से पृथक् रहने का तथ्य भी प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया गया है । प्रतिवादी ने अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 3 में यह स्वीकार किया है कि उसने मनीऑर्डर द्वारा वादी को भरणपोषण के लिए कोई धनराशि नहीं भेजी यद्यपि उसने यह कहा है कि वह अपनी पत्नी के भरणपोषण के लिए धन भेजता था और जब एक बार उसने यह स्वीकार कर लिया है कि वह भरणपोषण की धनराशि भेजता था तो उसका यह कर्तव्य है कि वह यह स्पष्ट करे कि उसने किस रीति से धनराशि भेजी थी । तथापि, प्रतिवादी ने इस संबंध में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है । अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यद्यपि प्रतिवादी कुरान के निदेशों के अनुसार अपनी दूसरी पत्नी को रखता है, तथापि, वह वादी से कुरान के व्यादेशों के अनुसार समान व्यवहार नहीं करता है और इसलिए न्यायालय के मतानुसार अधिनियम की धारा 2(ii) के खण्ड (च) के अधीन परिकल्पित विवाह-विघटन का आधार भी साबित हो गया है । अतः दूसरा प्रश्न भी अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है । उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों के जो अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित की गई हैं, अतिरिक्त विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष के पैरा 15 का परिशीलन करने पर इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि प्रतिवादी ने पिछले 8 वर्षों से वादी को भरणपोषण की कोई धनराशि नहीं भेजी है । यह निष्कर्ष साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित है जिसकी न्यायालय ने ऊपर परीक्षा की है और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए तर्कों से भिन्न मत अपनाने के लिए कोई कारण प्रतीत नहीं होता है । अतः न्यायालय के मतानुसार वादी 1939 के अधिनियम की धारा 2(viii) के अधीन विवाह-विघटन की डिक्री पाने की हकदार है जो यह व्यादेशित करती है कि विवाह के विघटन की डिक्री पारित की जा सकती है यदि पति दो वर्षों की अवधि तक अपनी पत्नी की उपेक्षा करने का दोषी है या भरणपोषण करने में विफल रहता है । वस्तुतः विद्वान् विचारण न्यायालय ने भी इसी आधार पर डिक्री पारित की है । (पैरा 16, 17, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1983] ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 114 :
मधुसूदन दास बनाम **श्रीमती नारायणी बाई और अन्य ;** 16

[1975] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1909 :
निज़ामुद्दीन अहमद बनाम **नर्मदा प्रसाद और अन्य** । 16

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1996 की प्रथम अपील सं. 196.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री आदिल उस्मानी

प्रत्यर्थी की ओर से —

न्यायमूर्ति ए. के. श्रीवास्तव – प्रतिवादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन यह प्रथम अपील सी. एस. सं. 11-ए/1993 में विद्वान् जिला न्यायाधीश, सियोनी द्वारा तारीख 8 मार्च, 1996 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. संक्षेप में वादी-प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन है कि उसका पति (प्रतिवादी) सुन्नी मुसलमान है और वह भी सुन्नी मुसलमान है और वे हनफ़ी विधि से विनियमित होते हैं । मुस्लिम समाज में मुस्लिम विवाह-विघटन अधिनियम, 1939 (जिसे आगे संक्षेप में "1939 का अधिनियम" कहा गया है) लागू होता है । वादी और प्रतिवादी का विवाह तारीख 23 मई, 1982 को हुआ था । पूर्व में वे कुछ दिनों तक अर्थात् 5 जून, 1987 तक साथ-साथ रहे थे तथापि, वे तारीख 5 जून, 1987 से पृथक् रहने लगे । वादी का यह भी पक्षकथन है कि उनके विवाह से एक पुत्री उत्पन्न हुई थी जिसका नाम शहनाज़ बानो है । यह भी अभिवाक् किया गया है कि प्रतिवादी ने वर्ष 1990 में ग्राम छीदी, तहसील लखनादोन में दूसरा विवाह कर लिया । वादी ने अपने काउंसेल द्वारा मेहर का संदाय करने के लिए प्रतिवादी को एक नोटिस भेजा था जिसका कि प्रतिवादी द्वारा तारीख 31 जुलाई, 1990 को जवाब दिया गया था । ये सभी तथ्य विवादित नहीं हैं ।

3. वादी के कथनानुसार उसके विवाह के 6 मास के पश्चात् प्रतिवादी की माता और बहनों ने उसके साथ दुर्व्यवहार करना आरंभ कर दिया और

प्रतिवादी की मौजूदगी में उसके साथ मार-पीट भी की । प्रतिवादी के बहनोई ने उसको गंदी-गंदी गालियां दीं । इन तथ्यों और परिस्थितियों में वादी को इस बात का डर लगा कि उसके गर्भ में पलते बच्चे को नुकसान पहुंच सकता है । परिणामतः वादी, प्रतिवादी और उसकी माता की सहमति से अपने माता-पिता के घर सियोनी रहने चली गई जहां उसने एक पुत्री को जन्म दिया जिसका बाद में नाम शहनाज़ बानो रखा गया । पुत्री के जन्म के पश्चात् वादी अपनी हाल ही में जन्मी पुत्री के साथ अपनी ससुराल चली गई किंतु प्रतिवादी के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । वह उसका ध्यान नहीं रखता था । वादी का यह भी पक्षकथन है कि 5 जून, 1987 को वादी के चचेरे भाई का विवाह था इसलिए वह विवाह में सम्मिलित होने के लिए अपने माता-पिता के घर सियोनी आई । विवाह में उसका पति भी आया था किन्तु उसने वादी और अपनी निर्दोष पुत्री की परवाह नहीं की इसलिए वह अकेले ही अपने महगांव आ गई । उसका यह भी पक्षकथन है कि प्रतिवादी रिवाजों और अधिकारों के अनुसार कभी भी उसको विदा कराने के लिए उसके माता-पिता के घर नहीं आया अपितु वह गुप्त रूप से दूसरा विवाह करने की फिराक में लग गया और अंततः उसने वर्ष 1990 में वादी को छोड़कर दूसरा विवाह कर लिया । वादपत्र में किए गए प्रकथनों के अनुसार प्रतिवादी अपनी दूसरी पत्नी को अपने साथ रखता है और उसकी (वादी की) पूर्णतया उपेक्षा करता है । उस अवधि के दौरान जब वह प्रतिवादी के साथ रह रही थी, वह उसके साथ गलत रूप से दुर्व्यवहार करता था । जबकि दूसरी पत्नी के साथ उसका बर्ताव और व्यवहार पूर्णतया स्नेहपूर्ण था और वादी के साथ प्रतिवादी द्वारा उस रीति में व्यवहार नहीं किया जा रहा था जैसा कि वह अपनी दूसरी पत्नी के साथ करता था । प्रतिवादी ने 1998 तक जब तक वाद फाइल किया गया, वादी के लिए भरणपोषण का कोई इंतजाम नहीं किया था और मेहर के संदाय की मांग की सूचना भेजने के बावजूद उसे मेहर का संदाय नहीं किया गया । अतः उपर्युक्त कारणों से वादी द्वारा 1939 के अधिनियम के अधीन विवाह-विघटन के लिए वर्तमान वाद फाइल किया गया ।

4. प्रतिवादी-अपीलार्थी ने उन तथ्यों के सिवाय जो स्वीकार किए गए हैं, वादपत्र में किए गए अन्य प्रकथनों से इनकार किया और विनिर्दिष्ट रूप से इस बात से इनकार किया कि उसकी माता, बहन या बहनोई ने कभी भी दुर्व्यवहार किया था । यह भी अभिवाक् किया गया है कि उसके प्रति उनका व्यवहार क्रूरतापूर्ण नहीं है । प्रतिवादी के अनुसार वादी शहरी

वातावरण में रहने की अभ्यस्त है और इसलिए वह गांव जैसे वातावरण में रहने के लिए और रहन-सहन अपनाने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि वह गांव में नहीं रहना चाहती है और इसलिए वह प्रतिवादी को सियोनी में रहने के लिए दबाव दे रही थी जो कि उसके लिए संभव नहीं है क्योंकि गांव में उसकी कृषि भूमि है और इसलिए वह वादी को अपने व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए और अपने रहन-सहन में और जीवन में परिवर्तन के लिए सदैव सलाह देता रहा था और यह सलाह देता रहा था कि उसे ग्रामीण जीवन में सामंजस्य करना चाहिए किंतु उसके व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया । इसके अतिरिक्त यह भी अभिवाक् किया गया है कि जब वादी सियोनी में अपने चचेरे भाई के विवाह में सम्मिलित होने के लिए गई तो प्रतिवादी भी विवाह में गया था । इसके पश्चात् जब उसने वादी से अपने गांव महगांव साथ चलने के लिए कहा तो उसने साथ जाने से इनकार कर दिया और वह अपनी मर्जी से सियोनी में रह रही है । अंततः उसने अपनी माता के स्वास्थ्य की स्थिति को दृष्टिगत करते हुए जो कि दिन-प्रतिदिन गिर रहा है, उसने (प्रतिवादी ने) वर्ष 1990 में दूसरा विवाह कर लिया । प्रतिवादी के अनुसार उसने वादी को त्यक्त नहीं किया है और इसलिए वाद खारिज किया जाए ।

5. वादपत्र में किए गए प्रकथनों के आधार पर और लिखित कथन में किए गए कथनों के इनकार को देखते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय ने आवश्यक विवाद्यक विरचित किए और पक्षकारों का साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् विवाह-विघटन की डिक्री पारित करते हुए वाद डिक्री कर दिया । इसलिए प्रतिवादी द्वारा यह अपील फाइल की गई है ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा ये दो दलीलें दी गई हैं कि प्रतिवादी के अनुसार वादी के साथ उसकी माता, बहन और बहनोई द्वारा दुर्व्यवहार किया जाता था । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि वादी का यह पक्षकथन नहीं है कि उसका पति प्रतिवादी-अपीलार्थी उसके प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता था और उसके अपने पक्षकथन के अनुसार प्रतिवादी के कुटुंब के सदस्य उसके साथ क्रूरता बरतते हैं और जहां इस प्रकार की स्थिति है, वहां विवाह के विघटन के लिए डिक्री पारित की जा सकती है । इस संबंध में मेरा ध्यान 1939 के अधिनियम की धारा (2) (viii) की ओर दिलाया है । उन्होंने दूसरी दलील यह दी है कि इस तर्कयुक्त साक्ष्य के अभाव में कि अपीलार्थी उसे ठीक से नहीं रख रहा था और उसे वह प्रेम और स्नेह नहीं देता था जिसके लिए पत्नी हकदार है और

जो वह अपनी दूसरी पत्नी के प्रति उपदर्शित करता है, विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाह के विघटन की डिक्री पारित करने में विधिक रूप से गलती की है । धारा (2)(viii) की ओर मेरा ध्यान दिलाते हुए यह दलील दी गई है कि यदि पति कुरान की आज्ञाओं के अनुसार दूसरी पत्नी के समान व्यवहार नहीं करता है तो विवाह के विघटन की डिक्री पारित नहीं की जा सकती । अतः यह अनुरोध किया गया है कि इस अपील को मंजूर करके आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाए और वादी का वाद खारिज किया जाए ।

7. वादी-प्रत्यर्थी पर तामील के बावजूद उसकी ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ है ।

8. मैंने अपीलार्थी के काउंसेल श्री आदिल उस्मानी को सुना और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् मेरा यह मत है कि यह अपील खारिज किए जाने योग्य है ।

9. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की दलीलों के मूल्यांकन के अनुक्रम में दो प्रश्न उद्भूत होते हैं जिन्हें इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाना है और ये इस प्रकार हैं :–

(i) क्या प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा वादी के प्रति क्रूरता बरतने का तथ्य 1939 के अधिनियम की धारा (2)(viii) के निबंधनों में पूर्ण रूप से साबित हो गया है ?

(ii) क्या प्रतिवादी वादी के साथ उस रीति में व्यवहार नहीं करता है जिसमें वह अपनी दूसरी पत्नी के साथ व्यवहार करता है ?

उत्तर प्रश्न सं. (i)

10. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि वादी ने स्वयं यह दर्शित किया है कि अपीलार्थी उसके प्रति क्रूर नहीं है अपितु उसके कुटुंब के सदस्य उसकी पत्नी के प्रति क्रूर हैं, प्रथम दृष्टि में आकर्षक प्रतीत होती है, तथापि, गहन परीक्षा के पश्चात् मुझे इस दलील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है । दलील का मूल्यांकन करने के लिए साक्ष्य तथा 1939 के अधिनियम की धारा 2(viii)(क) और (च) पर विचार करना उचित होगा जो इस प्रकार है :–

"(viii) जहां पति उसके साथ क्रूरता का व्यवहार करता हो, अर्थात् –

(क) उसके ऊपर लगातार हमला करता हो या क्रूरता के आचरण द्वारा उसके जीवन को दूभर बना दिया हो भले ही ऐसा आचरण शारीरिक दुर्व्यवहार के बराबर न हो,

(च) यदि वह एक से अधिक पत्नियां रखता है तो कुरान की आज्ञा के अनुसार उसके साथ समान व्यवहार न करता हो ।"

11. वादी विक़ारूननिसा की पी. डब्ल्यू. 2 के रूप में परीक्षा की गई है । उसने अपने परिसाक्ष्य में विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि उसके विवाह के पश्चात् वह ससुराल में रह रही थी जहां वह अपने पति के कुटुंब के साथ रह रही थी जिनमें उसकी माता और तीन बहनें सम्मिलित हैं । उसने विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि वह अपनी ससुराल में दो-तीन दिन तक रही थी और उसके पश्चात् वह मायके चली गई थी किंतु उसके तुरंत पश्चात् वह अपनी ससुराल आ कर रहने लगी । आरंभ में उसके पति और उसके कुटुंब के सदस्यों का व्यवहार ठीक था तथापि, तीन-चार मास के पश्चात् उसकी सास और उसके पति उसके साथ दुर्व्यवहार करने लगे । उसके पति की माता और बहनें उसके विरुद्ध गलत आरोप लगाने लगीं और उस पर व्यंग करने लगीं तथा उसे डांटना फटकारना और यह कहना आरंभ कर दिया कि वह खाना ठीक नहीं बनाती है और देर तक सोती रहती है । प्रतिवादी का बहनोई उसकी ससुराल से 1 किलोमीटर की दूरी पर रहता है और वह जब भी उसकी ससुराल में आता है, अपनी सास से और अपनी पत्नी से मिथ्या शिकायतें करता है और उसके पश्चात् उसका बहनोई मां-बहन की गालियां देता है जो इतनी घिनौनी होती हैं कि वह खुले न्यायालय में नहीं बता सकती । उसने विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि उस प्रक्रम पर उसका पति भी मौजूद होता है किन्तु वह (प्रतिवादी) मामले में कभी भी हस्तक्षेप नहीं करता है और अपने बहनोई को गालियां देने और अपनी पत्नी को फटकारने से मना नहीं करता है । उसने यह भी कहा है कि विवाह के तीन चार वर्षों के पश्चात् उसकी ननद (पति की बहन) शाहिदा बेगम ने उसे पीटा था और उसने उसके ऊपर एक कटोरा (बड़ा प्याला) भी फेंका था जो उसके सिर में लगा था और उस समय वहां प्रतिवादी भी मौजूद था किंतु उसने उसे नहीं बचाया । उसने यह भी कहा है कि उसका बहनोई गालियां देते हुए उसे उसकी ससुराल छोड़कर जाने के लिए कहता था । अंततः उसके पति के कुटुंब के सदस्यों के असहनीय व्यवहार को देखते हुए जो कि कई बार उसकी मौजूदगी में हुआ था और उस समय वह मूक दर्शक के रूप में देखता रहा था, वह अपनी ससुराल से

मुल्ला जी के घर चली गई । उसने अपने परिसाक्ष्य में यह भी कहा है कि जब वह मुल्ला जी के घर रह रही थी तब उसके पति ने उसको खाने के लिए चावल भेजे थे और कभी-कभी उसने वह भी नहीं भेजे । परिणामतः वह मुल्ला जी के घर खाना खाती थी । उसने यह भी कहा है कि उसके पति ने उसके साथ दो बार मार-पीट की थी ।

12. इस साक्षी ने यह भी साक्ष्य दिया है कि वह मुल्ला जी के मकान से अपने मायके चली गई थी जहां वह पिछले आठ वर्षों से रह रही है । इस अवधि के दौरान उसके कुटुंब में एक विवाह था जिसमें प्रतिवादी भी सम्मिलित हुआ था किंतु वह उसे अपने घर नहीं ले गया । इस साक्षी की विस्तार से प्रतिपरीक्षा की गई है किंतु उसके कथन को अविश्वसनीय बनाने के लिए उसके परिसाक्ष्य में कुछ नहीं निकाला जा सका है ।

13. इस साक्षी के साक्ष्य का स्वयं उसकी माता मेहरूननिसा के साक्ष्य से भी समर्थन होता है जिसने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि उसकी उपस्थिति में उसके दामाद (प्रतिवादी) ने वादी को गाली-गुफ्तार किया । इस साक्षी के अनुसार वादी ने उसे यह बताया था कि प्रतिवादी तथा उसके कुटुंब के सदस्यों द्वारा उसके साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है और उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि प्रतिवादी के बहनोई ने उसकी पुत्री (वादी) को मां बहन की गालियां दी थीं किंतु प्रतिवादी ने कभी भी उसका बचाव नहीं किया यद्यपि वह वहां मौजूद रहता था ।

14. वादी को उसकी ससुराल से निकालने और कुछ दिन तक मुल्ला जी के घर पर रहने के तथ्य का उक्त मुल्ला जी अब्दुल मलिक (पी. डब्ल्यू. 3) के साक्ष्य से भी समर्थन होता है जिन्होंने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि वह ग्राम महगांव का रहने वाला है । उसने यह भी कहा है कि वादी लगभग 4-6 वर्ष पहले 15-20 दिन तक उसके घर पर रही थी । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वादी की ससुराल उसी गांव में है । इस साक्षी ने यह भी कहा है कि प्रतिवादी भी 8 दिन के पश्चात् उसके मकान पर रहने आया था किन्तु उसके पश्चात् वह वापस चला गया और दोबारा लौट कर नहीं आया । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कहा है कि वादी ने उसे यह बताया था कि उसकी ससुराल में झगड़ा रहता है ।

15. मेरे मतानुसार पी. डब्ल्यू. 3 अब्दुल मलिक जो स्वतंत्र साक्षी है और उसी गांव का निवासी है जहां प्रतिवादी रहता है, के साक्ष्य का इसलिए अत्यधिक महत्व है क्योंकि वादी उसके घर पर रही थी और

प्रतिवादी भी आरंभतः वादी के साथ 2-3 दिन तक रहा था तथापि, बाद में प्रतिवादी अपने घर वापस चला गया था और उसके पश्चात् वादी लगभग 15 दिन तक उसके मकान पर रही थी ।

16. यद्यपि प्रतिवादी की डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में परीक्षा की गई है और उसने अपने परिसाक्ष्य में उन सभी अभिकथनों से जो उसके विरुद्ध किए गए हैं, इनकार किया है । तथापि, मेरे मतानुसार वादी और उसके साक्षियों का साक्ष्य अधिक विश्वसनीय है और इसलिए विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि वादी का साक्ष्य अधिक विश्वसनीय है । यह सुस्थापित है कि जहां साक्षियों के कथनों के आधार पर दो मत संभव हों, सामान्यतया अपील न्यायालय द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत को जब तक साक्ष्य से पूर्णतया असंभव न हो स्वीकार किया जाना चाहिए । इस संबंध में मैं उच्चतम न्यायालय द्वारा **निज़ामुद्दीन अहमद** बनाम **नर्मदा प्रसाद और अन्य**[1] तथा **मधुसूदन दास** बनाम **श्रीमती नारायणी बाई और अन्य**[2] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों का उचित रूप से अवलंब ले सकता हूं । इसके अतिरिक्त अब्दुल मलिक (पी. डब्ल्यू. 3) जो प्रतिवादी के अपने गांव का निवासी है, प्रतिवादी के विरुद्ध अभिसाक्ष्य क्यों देगा । यह कहना आवश्यक नहीं है कि यह साक्षी एक स्वतंत्र साक्षी है ।

17. उपर्युक्त तथ्यात्मक पहलू और साक्ष्य की जो अभिलेख पर पेश किया गया है, परीक्षा करने पर और धारा (2)(viii)(क) के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि क्रूर आचरण के क्षेत्र को संकुचित अर्थ में नहीं लिया जा सकता । मात्र इस कारण कि प्रतिवादी ने वादी पर कभी भी हमला नहीं किया या मार-पीट नहीं की, यह नहीं कहा जा सकता कि उसने कोई क्रूरता नहीं बरती है । मेरे मतानुसार वादपत्र के पैरा 4-क और 4-ख में वादी द्वारा यह अभिवाक् किया गया है कि उसके प्रति प्रतिवादी का व्यवहार भी क्रूरतापूर्ण था और वह (उसका पति) भी उसके साथ मार-पीट करता था । उसने अपने इस अभिवाक् को अपने परिसाक्ष्य द्वारा भी साबित किया है जिस पर मैंने ऊपर विचार किया है । इसके अतिरिक्त वादी का इस आशय का प्रभावी साक्ष्य भी मौजूद है कि उसका पति (प्रतिवादी) और उसके कुटुंब के सदस्य उसके साथ दुर्व्यवहार करते थे और उसके साथ मार-पीट करते थे किंतु वह (उसका पति) कभी भी उसका बचाव नहीं

---

[1] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1909.

[2] ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 114.

करता था । न केवल इतना जब कि उसका (पति का) बहनोई उसकी ससुराल आता था, उसके बारे में मिथ्या शिकायतें करता था और उसे मां-बहन की गालियां देता था । यह उल्लेखनीय है कि वादी ने जो कि एक महिला है, इस प्रकार का साक्ष्य देते हुए अपनी लज्जा तथा स्त्री की अस्मिता को ध्यान में रखते हुए यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसके पति का बहनोई जिस प्रकार की गालियां देता था, वह खुले न्यायालय में नहीं बता सकती । अतः यह न्यायालय इस बारे में निष्कर्ष निकाल सकता है कि ये गालियां कितनी घृणित होंगी जो प्रतिवादी का बहनोई वादी को देता था । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उसका बहनोई उसके पति (प्रतिवादी) की उपस्थिति में इस प्रकार की गालियां देता था इसलिए मेरा यह मत है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी का आचरण 1939 के अधिनियम की धारा 2 के खण्ड (viii)(क) की परिधि और व्याप्ति के अंतर्गत आता है । अतः प्रश्न सं. 1 अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है और विद्वान् विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष की कि प्रतिवादी वादी के प्रति क्रूरता का व्यवहार करता था, एतद्द्वारा पुष्टि की जाती है ।

"उत्तर प्रश्न सं. 2"

18. तथ्यतः वादी के साक्ष्य से यह तथ्य भी साबित हो गया है कि वादी के साथ उस रीति में व्यवहार नहीं किया जाता है जो प्रतिवादी अपनी दूसरी पत्नी के साथ करता है और जिस प्रकार वह अपनी दूसरी पत्नी के साथ प्रेम और स्नेह का व्यवहार करता है जिसके लिए कोई पत्नी अपने पति से पाने की हकदार है । यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वादी प्रतिवादी से 8 वर्षों तक पृथक् रहने के बावजूद वह उसे भरण-पोषण की राशि नहीं भेजता था । प्रतिवादी ने यह भी स्वीकार किया है कि वह अपने आवास पर अपनी दूसरी पत्नी को रखकर समुचित रूप से भरण-पोषण करता है । वादी का प्रतिवादी से पृथक् रहने का तथ्य भी प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया गया है । प्रतिवादी ने अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 3 में यह स्वीकार किया है कि उसने मनीऑर्डर द्वारा वादी को भरण-पोषण के लिए कोई धनराशि नहीं भेजी यद्यपि उसने यह कहा है कि वह अपनी पत्नी के भरण-पोषण के लिए धन भेजता था और जब एक बार उसने यह स्वीकार कर लिया है कि वह भरण-पोषण की धनराशि भेजता था तो उसका यह कर्तव्य है कि वह यह स्पष्ट करे कि उसने किस रीति से धनराशि भेजी थी । तथापि, प्रतिवादी ने इस संबंध में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है ।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यद्यपि प्रतिवादी कुरान के निदेशों के अनुसार अपनी दूसरी पत्नी को रखता है तथापि, वह वादी से कुरान के व्यादेशों के अनुसार समान व्यवहार नहीं करता है और इसलिए मेरे मतानुसार अधिनियम की धारा 2 (viii) के खण्ड (च) के अधीन परिकल्पित विवाह विघटन का आधार भी साबित हो गया है । अतः दूसरा प्रश्न भी अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है ।

19. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों के जो अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित की गई हैं, अतिरिक्त विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष के पैरा 15 का परिशीलन करने पर इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि प्रतिवादी ने पिछले 8 वर्षों से वादी को भरण-पोषण की कोई धनराशि नहीं भेजी है । यह निष्कर्ष साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित है जिसकी मैंने ऊपर परीक्षा की है और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए तर्कों से भिन्न मत अपनाने के लिए कोई कारण प्रतीत नहीं होता है । अतः मेरे मतानुसार वादी 1939 के अधिनियम की धारा 2(viii) के अधीन विवाह विघटन की डिक्री पाने की हकदार है जो यह व्यादेशित करती है कि विवाह के विघटन की डिक्री पारित की जा सकती है यदि पति दो वर्षों की अवधि तक अपनी पत्नी की उपेक्षा करने का दोषी है या भरण-पोषण करने में विफल रहता है । वस्तुतः विद्वान् विचारण न्यायालय ने भी इसी आधार पर डिक्री पारित की है ।

20. ऊपर उल्लिखित कारणों से मुझे इस अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और यह एतद्द्वारा खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

महे.

सुशीला देवी

बनाम

बाला राम

तारीख़ 13 अगस्त, 2013

न्यायमूर्ति आलोक अराधे

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 16 (1976 के अधिनियम सं. 60 द्वारा यथा संशोधित) – समुदाय में प्रचलित रूढ़ि के अनुसार विवाह – उत्तराधिकार – प्रतिवादियों द्वारा संपत्ति में अधिकार के बारे में आपत्ति – पुत्री के अंक पत्र, बैंक पास बुक तथा अन्य साक्ष्य से विवाह होना साबित होना – पत्नी और पुत्री को संपत्ति में उनका हक़ देने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

वादी-अपीलार्थी द्वारा संपत्ति में अपने हक़ की घोषणा के अनुतोष हेतु सिविल वाद फाइल किया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा वाद डिक्री किया गया । प्रतिवादी द्वारा अपील फाइल करने पर अपील न्यायालय ने निचले न्यायालय के निष्कर्षों को उलटते हुए अपील मंजूर कर ली । अत: वादी-अपीलार्थी द्वारा यह द्वितीय अपील फाइल की गई । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह भी सुस्थापित विधिक स्थिति है कि प्रथम अपील न्यायालय को विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटते हुए उन कारणों के संबंध में अपने कारण देने चाहिए जिन पर विचारण न्यायालय का निष्कर्ष आधारित है । विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में अभिलेख पर के साक्ष्य की अवेक्षा की जा सकती है । वादियों ने वादी सं. 2 का अंक पत्र प्रदर्श पी/17 प्रस्तुत किया है जिसमें उसे मृतक कृष्ण कुमार की पुत्री होने के रूप में वर्णित किया गया है । सहकारी सेवा समिति द्वारा तारीख 17 फरवरी, 1982 को जारी पास बुक प्रदर्श पी/18 वादी सं. 1 को मृतक कृष्ण कुमार की पत्नी के रूप में वर्णित करती है और प्रदर्श पी/19 वह दस्तावेज है जिसमें यह उल्लिखित है कि वादी सं. 1 और मृतक कृष्ण कुमार का विवाह तारीख 20 मई, 1980 को सम्पन्न हुआ था । वादी ने उपर्युक्त दस्तावेज के लेखक जगदीश प्रसाद की (पी डब्ल्यू-2) के रूप में परीक्षा

कराई है । समान रूप में विवाह उत्सव के साक्षी उदय भान की वादी साक्षी सं. 3 के रूप में परीक्षा की गई है । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रतिवादी सं. 1 ने जो कि डी डब्ल्यू-1 है, अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 5 में यह स्वीकार किया है कि समुदाय में प्रचलित रूढ़ि के अनुसार पक्षकारों का विवाह किसी दस्तावेज को लिखकर कराया जा सकता है । अत: प्रदर्श पी/19 का निष्पादन जगदीश प्रसाद (पी डब्ल्यू-2) और उदय भान (पी डब्ल्यू-3) के साक्ष्य द्वारा सम्यक् रूप से साबित किया गया है । तथापि, विचारण न्यायालय ने दस्तावेज प्रदर्श पी/19 मात्र इस आधार पर त्यक्त किया है कि इसमें कृष्ण कुमार के हस्ताक्षर हैं जबकि अभिकथित रूप से विक्रय टिप्पण में कृष्ण कुमार का अंगुष्ठ चिन्ह है । यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि वादियों द्वारा वादी सं. 1 का कृष्ण कुमार के साथ विवाह होने के बारे में रूढ़ि के अनुसार साबित करने के लिए कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है । तथापि, निचले अपील न्यायालय उपर्युक्त निष्कर्ष अभिलिखित करने में अभिलेख पर के अन्य दस्तावेजी साक्ष्य अर्थात् प्रदर्श पी/17 और प्रदर्श पी/18 तथा जगदीश प्रसाद (पी डब्ल्यू-2) और उदय भान (पी डब्ल्यू-3) के परिसाक्ष्य को विचार में लेने में विफल रहे हैं । निचले अपील न्यायालय ने प्रतिवादी सं. 1 द्वारा अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 5 में की गई स्वीकारोक्ति को भी विचार में नहीं लिया है अर्थात् समुदाय में प्रचलित रूढ़ि के अनुसार दस्तावेज के निष्पादन द्वारा भी विवाह सम्पन्न किया जा सकता है । अत: निचले अपील न्यायालय ने प्रायिक और उपेक्षापूर्ण रीति में विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष को उलट दिया है । निचले अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित यह निष्कर्ष कि वादी सं. 1 मृतक कृष्ण कुमार की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी नहीं है और इसलिए वादी सं. 2 कृष्ण कुमार की पुत्री नहीं है, अभिलेख पर के साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता । उपर्युक्त कारणों से यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वादी सं. 1 मृतक कृष्ण कुमार की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी है और वादी सं. 2 मृतक कृष्ण कुमार की पुत्री है और वे वादान्तर्गत भूमियों में 1/4 भाग की हकदार हैं । विधि के सारभूत प्रश्न का तद्नुसार उत्तर दिया जाता है । (पैरा 8, 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2010] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2685 :
भारत माता और अन्य बनाम **आर. विजय रंगनाथन और अन्य** ; 5

[2009] (2009) 4 एस. सी. सी. 791 :
निकोलस वी. मेनजेस बनाम **जोसफ एम. मेनजेस** ; 8

[2009] (2009) 17 एस. सी. सी. 467 :
अरुमाराज देवदास बनाम **के. सुन्दरम नाडार** ; 8

[2008] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 673 = (2008) 2 एस. सी. सी. 728 :
नोपानी इनवेस्टमेंट (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम **संतोख सिंह** ; 8

[2006] (2006) 9 एस. सी. सी. 612 :
नीलम्मा और अन्य बनाम **सरोजम्मा और अन्य** ; 7

[2003] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 4351 = (2004) 9 एस. सी. सी. 468 :
कृष्ण मोहन कुल उर्फ **नानी चरन कुल और अन्य** बनाम **प्रतिमा मैहती और अन्य** ; 8

[2003] (2003) 1 एस. सी. सी. 730 :
जीनिया क्यूटिन और अन्य बनाम **कुमार सीताराम मांझी और अन्य** ; 7

[2001] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 938 :
डा. सूरजमणि स्टेला कुजूर बनाम **दुर्गा चरण हंसदाह** ; 6

[2001] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 965 = (2001) 3 एस. सी. सी. 179 :
संतोष हजारी बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी** ; 8

[1996] (1996) 2 एस. सी. सी. 567 :
गुरुनाम कौर (श्रीमती) और अन्य बनाम **पूरन सिंह और अन्य** ; 7

[1996] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1963 = (1996) 4 एस. सी. सी. 76 :
परायन कांडियाल एरावत कानाप्रावन कल्याणी अम्मा बनाम **के. देवी** ; 7

[1988] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 247 :
विनय सिंह जी बनाम **नटवर सिंह जी** ; 6

[1964] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 118 :
पुष्पावती विजय राम बनाम **पी. विश्वेश्वर** । 6

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1999 की द्वितीय अपील सं. 789.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री वीरेन्द्र वर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायमूर्ति आलोक अराधे – वादियों द्वारा फाइल की गई यह अपील इस न्यायालय की न्यायपीठ द्वारा विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों पर ग्रहण की गई है –

> "क्या वादी दुर्गावती मृतक कृष्ण कुमार की पुत्री होने के नाते उसकी उत्तराधिकारी है, यदि वह अविधिमान्य विवाह से उत्पन्न पुत्री है ?"

2. वर्तमान अपील फाइल करने से संबंधित तथ्यों का संक्षेप में इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है कि वादी सं. 2 प्रतिवादी सं. 1 की पौत्री है । प्रतिवादी सं. 2 और 3 प्रतिवादी सं. 1 के भाई हैं जबकि प्रतिवादी सं. 4 से 11 प्रतिवादी सं. 1 के चाचा हैं । वादी सं. 1 का विवाह वर्ष 1977 में 10 वर्ष की आयु में जमुना प्रसाद नामक व्यक्ति से हुआ था । जमुना प्रसाद की मृत्यु के पश्चात् 20 मई, 1980 को उसका विवाह प्रतिवादी सं. 1 के पुत्र कृष्ण कुमार के साथ हुआ । उक्त विवाह से उन दोनों की एक पुत्री वादी सं. 2 उत्पन्न हुई । कृष्ण कुमार की वर्ष 1984 में किसी समय मृत्यु हो गई । वाद पत्र में यह अभिवाक् किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 अनुसूची ए से सी में उल्लिखित वाद संपत्ति का स्वामी है जिसमें कृष्ण कुमार का 1/4 भाग था । यह भी अभिवाक् किया गया है कि वादी और प्रतिवादी संयुक्त कुटुम्ब के सदस्य हैं । तथापि, कृष्ण कुमार की मृत्यु के पश्चात् वादियों को मकान से निकाल दिया गया । इसके पश्चात् वादियों ने इस घोषणा के लिए अनुतोष की मांग करते हुए एक वाद फाइल किया कि वे वाद संपत्ति में 1/4 भाग और उसके कब्जे के लिए हकदार हैं ।

3. प्रतिवादी सं. 1 से 8 और प्रतिवादी सं. 9 से 11 ने लिखित कथन फाइल किया जिसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ इस बात से इनकार किया कि वादी सं. 1 न तो कृष्ण कुमार की पत्नी थी और न ही वादी सं. 2 कृष्ण कुमार की पुत्री है और इस प्रकार वादी संयुक्त कुटुम्ब के सदस्य नहीं हैं । वाद की ग्राह्यता के संबंध में इस आधार पर आक्षेप किया गया था कि चूंकि प्रतिवादियों के बीच कोई विभाजन नहीं हुआ है इसलिए वादियों का दावा स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । यह भी कहा गया था कि अमरावती नामक महिला कृष्ण कुमार की पत्नी थी और वादान्तर्गत संपत्ति कृष्ण कुमार की स्व-अर्जित संपत्ति है ।

4. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य के गहन मूल्यांकन के आधार पर तारीख 17 जुलाई, 1999 के निर्णय और डिक्री द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया कि वादी सं. 1 मृतक कृष्ण कुमार की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी है और वादी सं. 2 कृष्ण कुमार की पुत्री है और प्रतिवादियों ने यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है कि वाद संपत्ति प्रतिवादी की आनुवंशिक भूमि है । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिवादी सं. 1 द्वारा धारित भूमियों में मृतक कृष्ण कुमार का 1/4 भाग था और इसलिए वादीगण वादान्तर्गत भूमियों में 1/4 भाग की हकदार हैं और वाद परिसीमा के भीतर है । निचले अपील न्यायालय ने तारीख 15 अप्रैल, 1999 के आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया कि वादी सं. 1 यह साबित करने में विफल रही है कि उसका विवाह मृतक कृष्ण कुमार के साथ हुआ था या वादी सं. 2 कृष्ण कुमार की धर्मज (विधिसम्मत) पुत्री है । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि वादान्तर्गत भूमियां प्रतिवादी सं. 1 के नाम में अभिलिखित हैं इसलिए वे प्रतिवादी सं. 1 की स्व-अर्जित संपत्तियां हैं । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि वादीगण वादान्तर्गत भूमियों में 1/4 भाग की हकदार नहीं हैं । तद्नुसार वादियों का दावा खारिज किया गया था ।

5. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि वादियों ने समुदाय में प्रचलित रूढ़ियों के अनुसार विवाह होना साबित कर दिया है । इस संबंध में अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय का ध्यान प्रतिवादी सं. 1 की प्रतिपरीक्षा के पैरा 5 की ओर दिलाया है । यह भी दलील दी गई है कि यह उपधारित करने पर भी कि वादी सं. 2 अविधिमान्य विवाह से उत्पन्न हुई थी तो भी वह उस संपत्ति में अपने भाग

की हकदार है जिसे निचले अपील न्यायालय द्वारा मृतक कृष्ण कुमार की स्व-अर्जित संपत्ति माना गया है । उपर्युक्त दलीलों के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित **भारत माता और अन्य** बनाम **आर. विजय रंगनाथन और अन्य**[1] वाले मामले के विनिश्चय का अवलंब लिया है ।

6. मैंने अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया । विधि में यह सुस्थापित है कि रूढ़ि में पुरातनता की शर्तें और निश्चितता होनी चाहिए और इस संबंध में अभिलेख पर स्पष्ट और असंदिग्ध साक्ष्य मौजूद होना चाहिए । [**पुष्पावती विजय राम** बनाम **पी. विश्वेश्वर**[2], **विनय सिंह जी** बनाम **नटवर सिंह जी**[3] और **डा. सूरजमणि स्टेला कुजूर** बनाम **दुर्गा चरण हंसदाह**[4] वाले मामले देखिए] ।

7. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 16, 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित की गई है । उच्चतम न्यायालय द्वारा **गुरुनाम कौर (श्रीमती) और अन्य** बनाम **पूरन सिंह और अन्य**[5], **परायन कांडियाल एरावत कानाप्रावन कल्याणी अम्मा** बनाम **के. देवी**[6], **जीनिया क्यूटिन और अन्य** बनाम **कुमार सीताराम मांझी और अन्य**[7] और **नीलम्मा और अन्य** बनाम **सरोजम्मा और अन्य**[8] वाले मामलों में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की संशोधित धारा 16(1) का निर्वचन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी बच्चे को जो भले ही धर्मज न हो, उसको उसके पिता की संपत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त है । **भारत माता और अन्य** बनाम **आर. विजय रंगनाथन और अन्य**[1] वाले मामले में भी ऐसा ही मत व्यक्त किया गया है ।

8. समान रूप में यह भी सुस्थापित विधिक स्थिति है कि प्रथम अपील न्यायालय को विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटते हुए उन कारणों के संबंध में अपने कारण देने चाहिए जिन पर विचारण न्यायालय का

---

[1] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2685.
[2] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 118.
[3] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 247.
[4] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 938.
[5] (1996) 2 एस. सी. सी. 567.
[6] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1963 = (1996) 4 एस. सी. सी. 76.
[7] (2003) 1 एस. सी. सी. 730.
[8] (2006) 9 एस. सी. सी. 612.

निष्कर्ष आधारित है । [**संतोष हजारी** बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी**[1], **नोपानी इनवेस्टमेंट (प्राइवेट) लिमिटेड** बनाम **संतोख सिंह**[2], और **निकोलस वी. मेनजेस** बनाम **जोसफ एम. मेनजेस**[3] वाले मामले देखिए] । उच्च न्यायालय द्वितीय अपील में तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकता है बशर्ते ऐसे निष्कर्ष अनुचित हों । साक्ष्य का पुन: मूल्यांकन आपवादिक मामलों में ही अनुज्ञेय है । [**कृष्ण मोहन कुल** उर्फ **नानी चरन कुल और अन्य** बनाम **प्रतिमा मैहती और अन्य**[4] और **अरुमाराज देवदास** बनाम **के. सुन्दरम नाडार**[5] वाले मामले देखिए] ।

9. उपर्युक्त विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में अभिलेख पर के साक्ष्य की अवेक्षा की जा सकती है । वादियों ने वादी सं. 2 का अंक पत्र प्रदर्श पी/17 प्रस्तुत किया है जिसमें उसे मृतक कृष्ण कुमार की पुत्री होने के रूप में वर्णित किया गया है । सहकारी सेवा समिति द्वारा तारीख 17 फरवरी, 1982 को जारी पास बुक प्रदर्श पी/18 वादी सं. 1 को मृतक कृष्ण कुमार की पत्नी के रूप में वर्णित करती है और प्रदर्श पी/19 वह दस्तावेज है जिसमें यह उल्लिखित है कि वादी सं. 1 और मृतक कृष्ण कुमार का विवाह तारीख 20 मई, 1980 को सम्पन्न हुआ था । वादी ने उपर्युक्त दस्तावेज के लेखक जगदीश प्रसाद की (पी डब्ल्यू-2) के रूप में परीक्षा कराई है । समान रूप में विवाह उत्सव के साक्षी उदय भान की वादी सं. 3 के रूप में परीक्षा की गई है । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रतिवादी सं. 1 ने जो कि डी डब्ल्यू-1 है, अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 5 में यह स्वीकार किया है कि समुदाय में प्रचलित रूढ़ि के अनुसार पक्षकारों का विवाह किसी दस्तावेज को लिखकर कराया जा सकता है । अत: प्रदर्श पी/19 का निष्पादन जगदीश प्रसाद (पी डब्ल्यू-2) और उदय भान (पी डब्ल्यू-3) के साक्ष्य द्वारा सम्यक् रूप से साबित किया गया है ।

10. तथापि, विचारण न्यायालय ने दस्तावेज प्रदर्श पी/19 मात्र इस आधार पर त्यक्त किया है कि इसमें कृष्ण कुमार के हस्ताक्षर हैं जबकि अभिकथित रूप से विक्रय टिप्पण में कृष्ण कुमार का अंगुष्ठ चिन्ह है । यह

---

[1] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 965 = (2001) 3 एस. सी. सी. 179.

[2] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 673 = (2008) 2 एस. सी. सी. 728.

[3] (2009) 4 एस. सी. सी. 791.

[4] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 4351 = (2004) 9 एस. सी. सी. 468.

[5] (2009) 17 एस. सी. सी. 467.

भी अभिनिर्धारित किया गया है कि वादियों द्वारा वादी सं. 1 का कृष्ण कुमार के साथ विवाह होने के बारे में रूढ़ि के अनुसार साबित करने के लिए कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है । तथापि, निचले अपील न्यायालय उपर्युक्त निष्कर्ष अभिलिखित करने में अभिलेख पर के अन्य दस्तावेजी साक्ष्य अर्थात् प्रदर्श पी/17 और प्रदर्श पी/18 तथा जगदीश प्रसाद (पी डब्ल्यू-2) और उदय भान (पी डब्ल्यू-3) के परिसाक्ष्य को विचार में लेने में विफल रहे हैं । निचले अपील न्यायालय ने प्रतिवादी सं. 1 द्वारा अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 5 में की गई स्वीकारोक्ति को भी विचार में नहीं लिया है अर्थात् समुदाय में प्रचलित रूढ़ि के अनुसार दस्तावेज के निष्पादन द्वारा भी विवाह सम्पन्न किया जा सकता है । अत: निचले अपील न्यायालय ने प्रायिक और उपेक्षापूर्ण रीति में विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष को उलट दिया है । निचले अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित यह निष्कर्ष कि वादी सं. 1 मृतक कृष्ण कुमार की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी नहीं है और इसलिए वादी सं. 2 कृष्ण कुमार की पुत्री नहीं है, अभिलेख पर के साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता ।

11. उपर्युक्त कारणों से यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वादी सं. 1 मृतक कृष्ण कुमार की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी है और वादी सं. 2 मृतक कृष्ण कुमार की पुत्री है और वे वादान्तर्गत भूमियों में 1/4 भाग की हकदार हैं । विधि के सारभूत प्रश्न का तद्नुसार उत्तर दिया जाता है ।

12. परिणामत:, निचले अपील न्यायालय का निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है और विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को प्रत्यावर्तित किया जाता है । अपील खर्चों सहित मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

पतासी देवी (श्रीमती) मृतका जरिए विधिक प्रतिनिधि श्री गोपाल गुप्ता

बनाम

रवि कुमार माथुर और अन्य

तारीख 11 दिसम्बर, 2013

न्यायमूर्ति प्रशान्त कुमार अग्रवाल

राजस्थान परिसर (किराया और बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1950 – धारा 13(1)(क) और 13(3)(4) – किराएदारी – किराएदार द्वारा छह मास से अधिक की अवधि तक किराए का संदाय न किया जाना – बेदखली के लिए वाद – किराएदार द्वारा यह कथन किया जाना कि उसके अधिवक्ता ने किराया मकान मालिक के अधिवक्ता को संदत्त कर दिया था – किराया संदत्त करने के संबंध में कोई रसीद पेश न की जानी – किराएदार बेदखल किए जाने का पात्र है – मात्र मौखिक कथन के आधार पर उसे अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता ।

अपीलार्थी-किराएदार ने यह सिविल द्वितीय अपील व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन न्यायालय अपर जिला न्यायाधीश, क्रम-3 जयपुर नगर, जयपुर द्वारा सिविल नियमित अपील संख्या 32/2004 में दिनांक 23 मार्च, 2006 को पारित निर्णय व डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत की है जिसके माध्यम से विद्वान् अपीलीय न्यायालय ने न्यायालय-सिविल न्यायाधीश (कख.) जयपुर नगर (पश्चिम), जयपुर द्वारा वाद संख्या-95/89 में दिनांक 26 जुलाई, 2004 को पारित निर्णय व डिक्री की पुष्टि कर अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रस्तुत अपील को अस्वीकार कर खारिज किया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – राजस्थान परिसर (किराया एवं निष्कासन नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13(1)(क) के अनुसार यदि किराएदार द्वारा छः माह का किराया अदा नहीं किया जाता है तो यह निष्कासन का एक आधार है । वर्तमान प्रकरण में स्पष्ट है कि जब अपीलार्थी-किराएदार ने माह दिसम्बर, 1986 से माह मई, 1987 तक की छः माह की अवधि का निरन्तर किराया प्रत्यर्थी-भू-स्वामी का अदा नहीं किया तो इस अवधि के

समाप्त होते ही दिनांक 1 जून, 1987 को उक्त आधार पर निष्कासन के लिए वाद कारण उत्पन्न हो गया तथा इस कारणवश प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा वाद-पत्र के चरण संख्या-10 में अभिलिखित किया गया कि वाद प्रस्तुती हेतु वाद कारण दिनांक 1 जून, 1987 को उत्पन्न हुआ है । किराएशुदा परिसर से किराएदार के निष्कासन हेतु किराया अदायगी में व्यतिक्रम के आधार पर वाद कारण उत्पन्न होना तथा उसकी ओर से छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया बकाया होना पृथक्-पृथक् तथ्य है । विधि की सुस्थापित स्थिति है कि यदि किराएदार द्वारा छः माह की अवधि का किराया निरन्तर भू-स्वामी को अदा नहीं किया जाता है तो यह अवधि समाप्त होते ही किराया अदायगी में व्यतिक्रम का आधार भू-स्वामी के पक्ष में उत्पन्न हो जाता है तथा उसे अधिकार है कि वह वाद कारण उत्पन्न होने के बाद निर्धारित अवधि में निष्कासन हेतु वाद किराएदार के विरुद्ध प्रस्तुत करे । वर्तमान प्रकरण में भी प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने इस कारणवश दिनांक 1 जून, 1987 को वाद प्रस्तुती हेतु वाद कारण उत्पन्न होना अभिलिखित किया है । यहां इस तथ्य का उल्लेख किया जाना उचित होगा कि स्वयं अपीलार्थी-किराएदार का कथन है कि उसने माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 का किराया मनीआर्डर से प्रत्यर्थी को प्रेषित किया तथा जब उसने मनीआर्डर लेने से मना कर दिया तो दिनांक 9 जुलाई, 1987 को जून, 1987 तक का किराया न्यायालय में जमा करवाया । जब स्वयं अपीलार्थी-किराएदार अपनी ओर माह जून, 1987 तक का किराया बकाया होना स्वीकार कर रहा है तो उसे यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि वाद-पत्र के अनुसार उसके विरुद्ध माह मई, 1987 तक का ही किराया बकाया था । वाद माह अप्रैल, 1989 में प्रस्तुत किया गया । वाद कारण सर्वप्रथम दिनांक 1 जून, 1987 को उत्पन्न हुआ जो वाद प्रस्तुती तक निरन्तर जारी रहा । यद्यपि पत्रावली पर विद्यमान साक्ष्य तथा विशेष रूप से अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रस्तुत रसीद/चालान प्रदर्श ए-21 व प्रदर्श ए-22 से ज़ाहिर है कि उसने 7 माह का किराया दिनांक 9 जुलाई, 1987 को पूर्व वाद संख्या-273/1980 में संबंधित न्यायालय में जमा करवाया किन्तु इस प्रकार से जमा कराए गए किराए को विधिवत् नहीं माना जा सकता । यह सही है कि पूर्व वाद में दिनांक 12 दिसम्बर, 1986 को पारित निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने अपील प्रस्तुत की तथा उसका अंतिम निस्तारण दिनांक 28 मई, 1994 को हुआ । यह भी सही है कि भू-स्वामी द्वारा प्रस्तुत अपील के विचाराधीन होने के दौरान किराएदार पर दायित्व है कि वह विचारण न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 13(3) के अधीन पारित अंतिम

किराया निर्धारण आदेश की अनुपालना में माह दर माह किराया अपील के विचारण के दौरान भी न्यायालय में जमा करवाए किन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि यह किराया अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन प्रदत्त प्रक्रिया के अनुसार निर्धारित अवधि में जमा करवाया जाए । यद्यपि यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि दिनांक 12 दिसम्बर, 1987 को पारित निर्णय व डिक्री के विरुद्ध प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा अपील कब प्रस्तुत की गई तथा उसमें पूर्व वाद में विचारण न्यायालय द्वारा किराया व्यतिक्रम के संबंध में दिए गए निष्कर्ष को चुनौती दी गई अथवा नहीं, किन्तु तर्क हेतु यह स्वीकार भी किया जाए कि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने किराया व्यतिक्रम के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा पूर्व वाद में दिए गए निष्कर्ष को चुनौती देते हुए अपील प्रस्तुत की थी किन्तु फिर भी अपीलार्थी-किराएदार के लिए आवश्यक था कि वह माह दिसम्बर, 1986 का किराया अधिनियम की धारा 13(4) के अनुसार निर्धारित 15 दिवस की अवधि में यानि 15 जनवरी, 1987 तक या तो प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अदा करता अथवा न्यायालय में जमा करवाता तथा इसी तरह से माह जनवरी तथा उसके बाद के प्रत्येक माह का किराया अगले माह की 15 तारीख तक जमा करवाता किन्तु यह स्वीकृत तथ्य है कि अपीलार्थी-किराएदार ने प्रदर्श ए-21 एवं ए-22 के माध्यम से सात माह, माह दिसम्बर, 1986 से माह जून, 1987 तक का किराया एक साथ दिनांक 9 जुलाई, 1987 को न्यायालय में जमा करवाया । माह दिसम्बर, 1986 से माह जून, 1987 तक की अवधि का किराया विधिवत रूप से जमा न करवाने से यह माना जाएगा कि अपीलार्थी-किराएदार ने किराया अदायगी में द्वितीय व्यतिक्रम किया है तथा इस कारणवश प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को नया वाद उसके विरुद्ध प्रस्तुत करने की अधिकारिता थी । अपीलार्थी-किराएदार यह कहने का अधिकारी नहीं है कि उसने वर्तमान वाद प्रस्तुती से पूर्व उक्त सात माह का किराया 9 जुलाई, 1987 के पूर्व वाद में पारित अंतरिम किराया निर्धारण आदेश की अनुपालना में न्यायालय में जमा करवा दिया था तथा उसके लिए आवश्यक नहीं था कि वह इस अवधि का किराया व्यक्तिगत रूप से प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अदा करता या मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित करता अथवा अधिनियम की धारा 19-क के अधीन न्यायालय में जमा कराता तथा ऐसी सूरत में उक्त अवधि के लिए वाद कारण प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के पक्ष में उत्पन्न ही नहीं हुआ । जहां तक माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 तक की छः माह की अवधि का किराया 180/- रुपए अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को मनीआर्डर प्रदर्श ए-28 एवं प्रदर्श ए-29 के माध्यम से प्रेषित करने तथा

प्रत्यर्थी द्वारा उसे न लेने का प्रश्न है, अपीलार्थी-किराएदार के इस कथन को इस कारणवश विचारित नहीं किया जा सकता क्योंकि इस संबंध में किसी तरह का अभिकथन वादोत्तर में नहीं लिया गया है और न ही प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को प्रतिपरीक्षण के दौरान ही इस संबंध में सुझाव दिया गया है । जैसा पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि विधि की सुस्थापित स्थिति है कि ऐसे किसी तथ्य के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत नहीं की जा सकती और न ही प्रस्तुत की गई साक्ष्य को विचार में लिया जा सकता, जिस तथ्य के संबंध में अभिकथन नहीं लिया गया है । दोनों ही अधीनस्थ न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निष्कर्ष दिया है कि अभिकथन के अभाव में अपीलार्थी-किराएदार की ओर से प्रस्तुत इस साक्ष्य पर विचार नहीं किया जा सकता कि उक्त अवधि का किराया उसने मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित किया किन्तु प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने लेने से इनकार कर दिया । अन्यथा भी पत्रावली पर विद्यमान साक्ष्य की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा उक्त तथ्य के संबंध में दिए निष्कर्ष को अनुचित व गलत नहीं माना जा सकता । अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रस्तुत रसीद प्रदर्श ए-29 पर न तो डाक विभाग के कर्मचारी के हस्ताक्षर हैं न ही उस तिथि का अंकन है जब प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा मनीआर्डर लेने से इनकार किया गया और न ही डाक विभाग की मोहर इस रसीद पर अंकित है । वादोत्तर में अभिकथन न लिए जाने तथा प्रतिपरीक्षण में सुझाव न दिए जाने से प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अपीलार्थी-किराएदार के इस कथन का खण्डन करने का अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ कि उक्त अवधि का किराया मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित किया तथा भू-स्वामी ने लेने से इनकार कर दिया । ऐसी सूरत में रसीद प्रदर्श ए-29 पर उक्त तथ्यों का स्पष्ट रूप से अंकन न होने से अपीलार्थी-किराएदार पर दायित्व था कि वह डाक विभाग के उस कर्मचारी को साक्षी के रूप में न्यायालय के समक्ष पेश करता, जो प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के पास मनीआर्डर लेकर गया । यह सही है कि अधिनियम की धारा 13(3) के अधीन पारित अंतरिम किराया निर्धारण आदेश दिनांक 11 मई, 2000 द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष दिया गया कि अपीलार्थी-किराएदार के विरुद्ध माह अप्रैल, 2000 तक कोई अवशेष नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि प्रकरण के उस प्रक्रम पर विचारण न्यायालय ने अंतिम रूप से यह मान लिया कि किराएदार ने वाद प्रस्तुती से पूर्व छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अदा न कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम नहीं किया है । आदेश दिनांक 11 मई, 2000 के अवलोकन से ज़ाहिर है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी-

किराएदार द्वारा समय-समय पर अदा किए गए अथवा जमा कराए गए किराए का समायोजन माह अप्रैल, 2000 तक करते हुए यह निष्कर्ष दिया कि माह अप्रैल, 2000 तक ऐसा कोई किराया शेष नहीं है जिसकी अदायगी अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को की जानी है । यह निष्कर्ष इस सीमित प्रयोजन के लिए दिया गया कि क्या उक्त माह तक कोई किराया अवशेष है जिसकी अदायगी प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को की जानी है । विधि की सुस्थापित स्थिति है कि अधिनियम की धारा 13(3) के अधीन अंतरिम किराया निर्धारण केवल इस प्रयोजन के लिए किया जाता है कि किराएदार की ओर से किराया निर्धारण आदेश की तिथि तक कितना बकाया है तथा वाद के दौरान उसे किस दर से किराया अदा करना है । प्रकरण के इस प्रक्रम पर इस प्रश्न पर अंतिम रूप से कोई निष्कर्ष नहीं दिया जाता कि वाद प्रस्तुती से पूर्व किराएदार ने छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया अदा न कर व्यतिक्रम किया है अथवा नहीं । इस प्रश्न का निस्तारण पक्षकारान की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर वाद के अंतिम निस्तारण के समय किया जाता है । यदि अधिनियम की धारा 13(1)(क) का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जाए तो अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि किराएदार को उक्त प्रावधान के अधीन किराया अदायगी में व्यतिक्रम का दोषी तभी माना जाएगा जब यह पाया जाए कि उसने छः माह या अधिक अवधि का निरन्तर किराया भू-स्वामी को न तो अदा किया और न ही टेण्डर किया । उक्त प्रावधान के अनुसार यदि वाद प्रस्तुती से पूर्व तीन वर्ष की अवधि के दौरान किराएदार द्वारा किसी भी समय निरन्तर छः माह की अवधि का किराया अदा नहीं किया जाता है तो ऐसा न होना किराया अदायगी में व्यतिक्रम होगा तथा इस आधार पर वाद प्रस्तुत किया जा सकता है । यह ज़ाहिर नहीं है कि उक्त प्रावधान के अधीन किराया व्यतिक्रम तभी माना जाएगा जब यह पाया जाए कि वाद प्रस्तुती से तत्काल पूर्व छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया किराएदार ने न तो अदा किया और न ही टेण्डर किया । ऐसी सूरत में यदि वर्तमान प्रकरण में माह जुलाई, 1987 से वाद प्रस्तुती तिथि तक की अवधि के किराए अदायगी के संबंध में दोनों ही अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा किसी तरह का कोई निष्कर्ष न भी दिया गया है तो यह नहीं माना जा सकता कि अपीलार्थी-किराएदार को किराया व्यतिक्रम का दोषी नहीं माना जा सकता एवं उनका निष्कर्ष विधि-विरुद्ध होने से अपास्त किए जाने योग्य है । माह दिसम्बर, 1986 से माह जून, 1987 तक की अवधि के किराए में व्यतिक्रम संबंधी दिया गया निष्कर्ष ही अपीलार्थी-किराएदार के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री पारित

करने के लिए पर्याप्त है । (पैरा 9)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1994] 1994 (1) डब्ल्यू. एल. सी. (राज.) 714 : **भैरों लाल और एक अन्य** बनाम **चांदमल और एक अन्य** । 5

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2006 की एकलपीठ सिविल द्वितीय अपील सं. 361.

दीवानी नियमित अपील संख्या 32/2004 में अपर जिला न्यायाधीश, क्रम-3 जयपुर नगर, जयपुर द्वारा तारीख 23 मार्च, 2006 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री आलोक गर्ग और सुश्री लालिमा पुरोहित

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अशोक मेहता और देवेन्द्र शर्मा

न्यायमूर्ति प्रशान्त कुमार अग्रवाल – अपीलार्थी-किराएदार ने यह सिविल द्वितीय अपील व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन न्यायालय अपर जिला न्यायाधीश, क्रम-3 जयपुर नगर, जयपुर द्वारा सिविल नियमित अपील संख्या 32/2004 में दिनांक 23 मार्च, 2006 को पारित निर्णय व डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत की है जिसके माध्यम से विद्वान् अपीलीय न्यायालय ने न्यायालय-सिविल न्यायाधीश (कख.) जयपुर नगर (पश्चिम), जयपुर द्वारा वाद संख्या-95/89 में दिनांक 26 जुलाई, 2004 को पारित निर्णय व डिक्री की पुष्टि कर अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रस्तुत अपील को अस्वीकार कर खारिज किया है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय व डिक्री दिनांक 26 जुलाई, 2004 के माध्यम से प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी द्वारा प्रस्तुत वाद बाबत निष्कासन एवं मध्यवर्ती लाभ स्वीकार किया था ।

2. वर्तमान अपील के निस्तारण हेतु सुसंगत तथ्य संक्षेप में इस तरह से हैं कि प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी ने किराएशुदा परिसर से अपीलार्थी-किराएदार के निष्कासन एवं वसूली बकाया किराया के अनुतोष हेतु वाद विचारण न्यायालय के समक्ष दिनांक 11 अप्रैल, 1989 को इन अभिकथनों के साथ प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी ने माह दिसम्बर, 1986 से वाद प्रस्तुती तक का

किराया न तो अदा किया है और न ही टेण्डर किया है तथा इस तरह से अपीलार्थी ने छः माह से अधिक अवधि का किराया अदा न कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम किया है तथा इस आधार पर प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी किराएशुदा परिसर अपीलार्थी से खाली कराने के अधिकारी हैं । वादपत्र में यह भी अभिलिखित किया गया कि वाद कारण दिनांक 1 जून, 1987 को उत्पन्न हुआ जिस दिन अपीलार्थी ने छः माह की अवधि का किराया अदा न कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम किया है । अपीलार्थी-किराएदार द्वारा दिनांक 21 मार्च, 1990 को वादोत्तर प्रस्तुत किया गया जिसमें वादपत्र में अभिलिखित किए गए इन तथ्यों को असत्य बताकर अस्वीकार किया कि उसने माह नवम्बर, 1986 से वाद प्रस्तुती तक का किराया अदा न कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम किया है । यह भी अभिलिखित किया कि दिनांक 1 जून, 1987 अथवा अन्य किसी तिथि को प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी के पक्ष में वाद कारण उत्पन्न नहीं हुआ तथा वह किराया अदायगी में व्यतिक्रम के आधार पर किराएशुदा परिसर अपीलार्थी से खाली कराने का अधिकारी नहीं है । वादोत्तर के विशेष विवरण में यह भी कथन किया गया कि पूर्व वाद के विचारण के दौरान प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता को किराया अदा किया जाता था तथा इस पूर्व वाद के निर्णय के विरुद्ध प्रस्तुत अपील के दौरान भी अधिवक्ता प्रत्यर्थीगण को किराया प्राप्त करने के लिए कहा तो वे कहते रहे कि किराया ले लेंगे तथा फिर कहा कि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी एक मजिस्ट्रेट है, जिसे पत्र लिखकर पूछेंगे तथा इस टालमटोली में किराया चढ़ गया । विशेष विवरण में पुनः कथन किया गया कि प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी द्वारा किराया प्राप्त करने में टालमटोल करने से किराया चढ़ गया तो एक साथ न्यायालय में बकाया किराया जमा करवा दिया गया है ।

3. यहां इस तथ्य का उल्लेख किया जाना उचित होगा कि किराएशुदा परिसर को खाली करवाने हेतु प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी ने वर्तमान वाद से पूर्व अपीलार्थी-किराएदार के विरुद्ध नियमित वाद संख्या 273/1980 किराया अदायगी में व्यतिक्रम एवं उप किराएदारी के आधार पर प्रस्तुत किया था जिसका निस्तारण विचारण न्यायालय द्वारा अपने निर्णय व डिक्री दिनांक 12 दिसम्बर, 1986 के माध्यम से किया गया किन्तु उक्त पूर्व वाद में अपीलार्थी-किराएदार को प्रथम व्यतिक्रम का लाभ दिया जाकर किराया अदायगी में व्यतिक्रम के आधार पर निष्कासन की डिक्री पारित नहीं की गई तथा प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी का यह कथन भी प्रमाणित नहीं माना गया कि अपीलार्थी-किराएदार ने किराएशुदा परिसर को उप किराएदारी पर दे

दिया है । यह तथ्य भी विवादित नहीं है कि उक्त निर्णय व डिक्री दिनांक 12 दिसम्बर, 1986 के विरुद्ध प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा प्रथम अपील प्रस्तुत की गई, जिसका अंतिम निर्णय दिनांक 28 मई, 1994 को किया गया । पक्षकारान के मध्य यह तथ्य भी विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी की ओर से किराएशुदा परिसर अपीलार्थी-किराएदार के पास 30/- रुपए प्रतिमाह की दर से किराए पर है ।

4. वर्तमान वाद में प्रस्तुत अभिवचनों के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा वाद बिन्दु की रचना की गई तथा दोनों ही पक्षों ने मौखिक एवं प्रलेखीय साक्ष्य प्रस्तुत की । विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रस्तुत अभिवचनों, साक्ष्य एवं प्रचलित विधिक स्थिति पर विचार करते हुए अपने निर्णय व डिक्री दिनांक 26 जुलाई, 2004 के माध्यम से निष्कर्ष दिया कि अपीलार्थी-किराएदार ने किराया अदायगी में द्वितीय व्यतिक्रम किया है । उक्त निष्कर्ष के आधार पर अपीलार्थी-किराएदार के विरुद्ध निष्कासन एवं मध्यवर्ती लाभ की डिक्री पारित की गई । अपीलीय न्यायालय ने अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रस्तुत अपील को अपने निर्णय व डिक्री दिनांक 23 मार्च, 2006 के माध्यम से अस्वीकार कर खारिज कर दिया जिससे व्यथित होकर यह द्वितीय अपील हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई है ।

5. यह अपील दिनांक 22 सितम्बर, 2007 को विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों पर सुनवाई हेतु ग्रहण की गई :–

> 1. क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, वादी की ओर से काउंसेल श्री मान सिंह गुप्ता ने परीक्षा कराने का भार प्रतिवादी पर निचले न्यायालयों द्वारा ठीक ही डाला है या नहीं, विशिष्ट रूप से जब प्रतिवादी ने अपने काउंसेल प्रतिवादी साक्षी 2 कान्ता प्रसाद शर्मा की परीक्षा कराई है जिसने अपने अभिकथन में कहा कि उसने वादी की ओर से काउंसेल श्री मान सिंह गुप्ता को विवादित माह का किराया संदत्त कर दिया था ?
>
> 2. क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, **भैरों लाल और एक अन्य** बनाम **चांदमल और एक अन्य**[1] वाले मामले में अभिव्यक्त मत को दृष्टिगत करते हुए निचले न्यायालयों ने प्रतिवादी को इस अभिवाक् के समर्थन कि उनके अधिवक्ता, कान्ता प्रसाद

[1] 1994 (1) डब्ल्यू. एल. सी. (राज.) 714.

शर्मा, प्रति. सा. 2 ने वादी के काउंसेल श्री मान सिंह गुप्ता को विवादित माह के किराए की धनराशि संदत्त की थी, में मान सिंह गुप्ता की परीक्षा करने का भार डालने में अवैधता की है ?

6. अपील के समर्थन में अधिवक्ता अपीलार्थी ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए :–

1. अपीलार्थी-किराएदार का प्रारम्भ से ही कथन रहा है कि माह दिसम्बर, 1986 का किराया अधिवक्ता श्री कान्ता प्रसाद शर्मा ने उसकी ओर से प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी के अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा कर दिया था तथा अधिवक्ता श्री गुप्ता द्वारा किराया प्राप्त कर रसीद जारी करने का आश्वासन दिया गया किन्तु उनके द्वारा माह दिसम्बर, 1986 के किराए की रसीद जारी नहीं की गई यद्यपि पूर्व में उनके द्वारा समय-समय पर प्राप्त किए गए किराए की रसीदें जारी की गई हैं । उक्त तथ्य की पुष्टि हेतु अपीलार्थी की ओर से मूल किराएदार श्रीमती पतासी देवी के मुख्तयार आम श्री राम प्रकाश भारद्वाज तथा अधिवक्ता श्री कान्ता प्रसाद शर्मा के कथन लेखबद्ध करवाए गए जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में कथन किया है कि माह दिसम्बर, 1986 का किराया अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा कर दिया गया था किन्तु उसके बावजूद योग्य अधीनस्थ न्यायालयों ने उक्त माह का किराया अदा न होना इस आधार पर माना कि अपीलार्थी-किराएदार ने अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को साक्षी के रूप में अपने उक्त कथन की पुष्टि में प्रस्तुत नहीं किया । अधीनस्थ न्यायालयों का यह निष्कर्ष पत्रावली पर विद्यमान साक्ष्य एवं सुस्थापित विधिक स्थिति के प्रतिकूल है क्योंकि अधिवक्ता श्री कान्ता प्रसाद शर्मा को साक्षी के रूप में प्रस्तुत किए जाने के उपरान्त प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी पर दायित्व था कि वे श्री मान सिंह गुप्ता को साक्षी के रूप में इस तथ्य की पुष्टि हेतु प्रस्तुत करते कि माह दिसम्बर, 1986 का किराया उन्हें अदा नहीं किया गया । विचारण न्यायालय ने उक्त को प्रमाणित करने का भार सबूत गलत रूप से अपीलार्थी-किराएदार पर माना जब कि उक्त परिस्थिति में भार सबूत प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी का माना जाना चाहिए था । माह दिसम्बर, 1986 का किराया अदा न होने के निष्कर्ष स्वरूप विचारण न्यायालय द्वारा माना गया कि अपीलार्थी-किराएदार ने वाद प्रस्तुती से पूर्व छः माह का किराया अदा न कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम किया है । यदि उक्त किराया अदा होना अधीनस्थ

न्यायालयों द्वारा माना जाता तो पत्रावली पर विद्यमान अभिवचनों व साक्ष्य से अधिक से अधिक यह निष्कर्ष दिया जा सकता था कि अपीलार्थी-किराएदार ने माह जनवरी, 1987 से माह मई, 1987 यानि पांच माह का किराया प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अदा नहीं किया तथा ऐसी सूरत में छः माह से कम की अवधि का किराया अदा न होने से किराया अदायगी में व्यतिक्रम के आधार पर निष्कासन की डिक्री पारित नहीं की जा सकती थी । यदि किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिए भार सबूत गलत रूप से किसी पक्ष पर डाला जाता है तो ऐसा किए जाने से ऐसे पक्ष के अधिकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते हैं तथा अपीलीय न्यायालय इस आधार पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष को अपास्त कर सकती है । विधि की सुस्थापित स्थिति है कि भू-स्वामी पर अपने इस कथन को प्रमाणित करने का भार है कि किराएदार ने वाद प्रस्तुती से पूर्व निरन्तर छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया अदा न कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम किया है । वर्तमान प्रकरण में गलत रूप से भार सबूत अपीलार्थी-किराएदार पर रखे जाने से माह दिसम्बर, 1986 का किराया अदा न होने का निष्कर्ष तथ्यों व सुस्थापित विधि स्थिति के विपरीत होने से अपास्त किए जाने योग्य है ।

2. योग्य अधीनस्थ न्यायालयों का यह निष्कर्ष भी पत्रावली पर विद्यमान अभिवचनों व साक्ष्य के विपरीत है कि अपीलार्थी-किराएदार ने माह जनवरी, 1987 से जून, 1987 यानि छः माह का किराया प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अदा नहीं किया । वादपत्र में यद्यपि यह कथन किया गया कि अपीलार्थी-विराएदार ने माह नवम्बर, 1986 के पश्चात् से वाद प्रस्तुती तक छः माह से अधिक अवधि का किराया अदा न कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम किया है किन्तु साथ ही वादपत्र के चरण संख्या-10 में स्पष्ट शब्दों में यह भी अभिलिखित किया है कि वाद कारण दिनांक 1 जून, 1987 को उत्पन्न हुआ जिसका सीधा सा अर्थ है कि स्वयं प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के अनुसार माह मई, 1987 तक का किराया अपीलार्थी-किराएदार द्वारा अदा नहीं किया गया है । जब स्वयं प्रत्यर्थी-भू-स्वामी का ही कथन नहीं था कि अपीलार्थी-किराएदार ने माह जून, 1987 तक का किराया अदा नहीं किया है तो दोनों ही अधीनस्थ न्यायालयों को यह निष्कर्ष देने की अधिकारिता नहीं थी कि अपीलार्थी-किराएदार ने माह जनवरी, 1987

से माह जून, 1987 यानि छः माह का किराया अदा नहीं किया है । विधि की सुस्थापित स्थिति है कि न्यायालय को पक्षकारान द्वारा लिए गए अभिवचनों के बाहर जाकर अपने स्तर पर नया केस बनाते हुए निष्कर्ष देने की अधिकारिता नहीं है ।

3. पत्रावली पर विद्यमान साक्ष्य से प्रमाणित है कि माह दिसम्बर, 1986 के उपरान्त जब भी किराया अपीलार्थी-किराएदार ने प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को व्यक्तिगत रूप से अदा करने की कोशिश की तो उसके द्वारा किराया प्राप्त नहीं किया गया जिस पर उसने मनीआर्डर के माध्यम से माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 तक का छः माह का किराया रुपए 180/- प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को प्रेषित किया किन्तु उसने मनीआर्डर प्राप्त न कर वापस लौटा दिया । मनीआर्डर के माध्यम से किराया प्रेषित करने के तथ्य की पुष्टि हेतु अपीलार्थी-किराएदार की ओर से प्रदर्श ए-28 तथा प्रदर्श ए-29 प्रस्तुत किए गए थे किन्तु विद्वान् अधीनस्थ न्यायालयों ने बिना किसी समुचित कारण उन्हें कूट रचित मानकर अपीलार्थी-किराएदार के इस कथन को प्रमाणित नहीं माना कि उक्त प्रकार से किराया प्रेषित किया गया जिसे प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने प्राप्त करने से इनकार कर दिया । भारतीय डाक विभाग एक स्वतंत्र सरकारी एजेन्सी है जिस पर अपीलार्थी-किराएदार अथवा अन्य किसी व्यक्ति का नियंत्रण नहीं हो सकता तथा यदि डाक विभाग के कर्मचारी ने प्रदर्श ए-29 पर अपने हस्ताक्षर कर तिथि व मोहर अंकित नहीं की तो इसके लिए अपीलार्थी-किराएदार उत्तरदायी नहीं है तथा हस्ताक्षर व तिथि के अभाव में यह निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता कि प्रदर्श ए-29 कूटरचित लेख है । अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रदर्श ए-28 तथा ए-29 प्रस्तुत करने से उसके लिए आवश्यक नहीं था कि वह मनीआर्डर प्रेषित किए की पोस्टल रसीद तथा पोस्ट ऑफिस के उस कर्मचारी को साक्षी के रूप में प्रस्तुत करता जो मनीआर्डर लेकर प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के पास गया था ।

4. पत्रावली पर विद्यमान साक्ष्य का यह तथ्य भी प्रमाणित है कि जब प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने व्यक्तिगत रूप से एवं मनीआर्डर के माध्यम से माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 तक का किराया प्राप्त नहीं किया तो अपीलार्थी-किराएदार ने प्रदर्श ए-21 एवं प्रदर्श-22 रसीद/चालान के माध्यम से उक्त अवधि का किराया न्यायालय में

जमा करा दिया । प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा व्यक्तिगत रूप से एवं मनीआर्डर के माध्यम से किराया प्राप्त न करने की सूरत में अपीलार्थी-किराएदार के पास इसके अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं था कि वह किराया न्यायालय में जमा करवाता । उक्त प्रकार से किराया न्यायालय में जमा करवाने से विद्वान् अधीनस्थ न्यायालयों का यह निष्कर्ष गलत सिद्ध होता है कि अपीलार्थी-किराएदार ने माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 तक का किराया अदा नहीं किया । यद्यपि दोनों ही अधीनस्थ न्यायालयों ने समान रूप से यह निष्कर्ष दिया है कि अपीलार्थी-किराएदार ने माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 तक की अवधि का किराया न तो अदा किया और न ही टेण्डर किया किन्तु यह निष्कर्ष पत्रावली पर विद्यमान साक्ष्य के कतई प्रतिकूल होने से अनुचित (perverse) है तथा इस द्वितीय अपील में भी उच्च न्यायालय को अधिकार प्राप्त है कि वह ऐसे निष्कर्ष में हस्तक्षेप कर उसे अपास्त कर सकता है । उक्त अवधि का किराया अपीलार्थी ने दिनांक 9 जुलाई, 1987 को पूर्व वाद संख्या 273/1980 में जमा कराया क्योंकि पूर्व वाद में दिनांक 12 दिसम्बर, 1986 को पारित निर्णय व डिक्री के विरुद्ध प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा प्रस्तुत अपील तत्समय विचाराधीन थी तथा अपीलार्थी-किराएदार को न केवल अधिकारिता थी बल्कि विधिक उत्तरदायित्व भी था कि वह पूर्व वाद में पारित अंतरिम किराया निर्धारण आदेश की अनुपालना में किराया निरन्तर प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा प्रस्तुत अपील की विचाराधीन अवधि के दौरान न्यायालय में जमा कराता । पूर्व वाद में किराया जमा से अपीलार्थी के लिए आवश्यक नहीं था कि वह व्यक्तिगत रूप से किराया अदा करता, मनीआर्डर से प्रेषित करता या अधिनियम की धारा 19-क के अधीन प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर न्यायालय में जमा कराता ।

5. विचारण न्यायालय ने अपने अंतरिम किराया निर्धारण आदेश दिनांक 11 मई, 2000 द्वारा यह निष्कर्ष दिया है कि अपीलार्थी-किराएदार के विरुद्ध माह अप्रैल, 2000 तक कोई किराया अवशेष नहीं है । इस निष्कर्ष का एक मात्र अर्थ है कि विचारण न्यायालय ने यह माना कि वाद प्रस्तुती से पूर्व भी अपीलार्थी-किराएदार के विरुद्ध कोई किराया अवशेष नहीं था, ऐसी सूरत में विचारण उपरांत न्यायालय को यह निष्कर्ष देने की अधिकारिता नहीं थी कि

अपीलार्थी-किराएदार ने वाद प्रस्तुती से पूर्व छः माह से अधिक अवधि का किराया अदा न कर किराया अदायगी में द्वितीय व्यतिक्रम किया है, विशेष रूप से इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि आदेश दिनांक 11 मई, 2000 को अपील के माध्यम से प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा चुनौती नहीं दी गई तथा यह आदेश अंतिम हो गया । इस तरह से विचारण न्यायालय ने अवशेष किराए के संबंध में परस्पर विरोधाभासी निष्कर्ष दिए हैं ।

6. अधिनियम की धारा 13(1)(क) के अधीन किराया व्यतिक्रम तभी माना जाएगा जब न्यायालय द्वारा यह पाया जाए कि वाद प्रस्तुती से तत्काल पूर्व की छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया न तो अदा किया गया और न ही टेण्डर किया गया । वर्तमान प्रकरण में यह निष्कर्ष नहीं है कि वाद प्रस्तुती से तत्काल पूर्व की छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया अदा नहीं किया गया, ऐसी सूरत में अपीलार्थी को किराया अदायगी में व्यतिक्रम का दोषी नहीं माना जा सकता । दोनों ही अधीनस्थ न्यायालयों ने इस महत्वपूर्ण विधिक स्थिति पर विचार नहीं किया । उच्च न्यायालय को अधिकार प्राप्त है कि वह इस द्वितीय अपील में उक्त प्रश्न पर विचार कर अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा दिए गए निष्कर्ष को अपास्त करे । ऐसी सूरत में यह तथ्य असंगत हो जाता है कि अपीलार्थी ने माह दिसम्बर, 1986 से माह जून, 1987 तक का किराया विधिवत अदा किया है या नहीं । अधिवक्ता अपीलार्थी द्वारा निवेदन किया गया कि पत्रावली पर विद्यमान अभिवचनों व साक्ष्य से स्पष्ट है कि वर्तमान वाद प्रस्तुती से पूर्व अपीलार्थी-किराएदार के विरुद्ध छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया अवशेष नहीं था, ऐसी सूरत में किराया अदायगी में व्यतिक्रम के आधार पर पारित डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है ।

7. इसके विपरीत विद्वान् अधिवक्ता प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने विद्वान् अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय व डिक्री का समर्थन करते हुए निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए :–

1. वादपत्र में स्पष्ट रूप से अभिकथन किया गया है कि अपीलार्थी-किराएदार ने माह नवम्बर, 1986 के पश्चात् यानि दिनांक 1 दिसम्बर, 1986 से वाद प्रस्तुती तक छः माह से भी अधिक अवधि का किराया अदा न कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम किया है तथा इस आधार पर वे निष्कासन की डिक्री प्राप्त करने के अधिकारी हैं, ऐसी

सूरत में अपीलार्थी का यह तर्क कतई गलत है कि प्रत्यर्थीगण ने माह मई, 1987 तक का ही किराया अवशेष होना अभिकथित किया है । वादपत्र के चरण संख्या-10 में दिनांक 1 जून, 1987 को वाद कारण उत्पन्न होना अभिकथित किए जाने का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि प्रत्यर्थी ने माह मई, 1987 तक का किराया ही बकाया होना बताया है । राजस्थान परिसर (किराया एवं निष्कासन नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13(1)(क) के अनुसार यदि किराएदार द्वारा छः माह का किराया अदा नहीं किया जाता है तो यह निष्कासन का एक आधार है तथा क्योंकि अपीलार्थी-किराएदार ने माह दिसम्बर, 1986 से माह मई, 1987 तक छः माह की निरन्तर अवधि का किराया प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अदा नहीं किया तो इस छः माह की अवधि समाप्त होते ही दिनांक 1 जून, 1987 को उक्त आधार पर निष्कासन के लिए वाद कारण उत्पन्न होना वादपत्र चरण संख्या-10 में अभिलिखित किया गया है । वादपत्र के इस चरण में ही स्पष्ट किया गया है कि दिनांक 1 जून, 1987 को वाद कारण इसलिए उत्पन्न हुआ क्योंकि अपीलार्थी-किराएदार ने छः माह की अवधि का किराया अदा नहीं किया है । माह दिसम्बर, 1986 से माह मई, 1987 तक छः माह की अवधि का किराया अदा न करने के वाद कारण सर्वप्रथम दिनांक 1 जून, 1987 को उत्पन्न हुआ जो निरन्तर वाद प्रस्तुती तक जारी रहा । स्वयं अपीलार्थी-किराएदार का कथन है कि उसने माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 तक का किराया मनीआर्डर से प्रत्यर्थी को प्रेषित किया तथा जब उसने लेने से मना कर दिया तो दिनांक 9 जुलाई, 1987 को जून, 1987 तक का किराया न्यायालय में जमा कराया यानि स्वयं अपीलार्थी स्वीकार करता है कि उसकी ओर से जून, 1987 तक का किराया बाकी था, ऐसी सूरत में अपीलार्थी यह कहने का अधिकारी नहीं है कि वादपत्र में माह मई, 1987 तक का किराया बकाया होना प्रत्यर्थी ने अभिलिखित किया है ।

2. वादोत्तर में यद्यपि यह कथन किया गया कि पूर्व वाद के दौरान अधिवक्ता प्रत्यर्थी को किराया अदा किया जाता रहा है तथा अपील के दौरान भी अधिवक्ता प्रत्यर्थी को किराया प्राप्त करने के लिए कहा गया किन्तु ऐसा कोई अभिकथन नहीं किया गया कि माह दिसम्बर, 1986 का किराया अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा कर दिया गया है किन्तु उन्होंने रसीद जारी नहीं की । उक्त तथ्य के

संबंध में वादोत्तर में अभिवचन न लेने से अपीलार्थी को इस आशय का साक्ष्य प्रस्तुत करने की अधिकारिता नहीं थी कि माह दिसम्बर, 1986 का किराया अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा कर दिया गया है तथा यदि कोई साक्ष्य प्रस्तुत कर भी दी गई है तो इसे कानूनन पढ़ा नहीं जा सकता है । ऐसी सूरत में यह प्रश्न कतई असंगत है कि श्री मान सिंह गुप्ता को साक्षी के रूप में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया अथवा नहीं । यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी श्री रवि कुमार माथुर, जो साक्षी के रूप में विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ, को प्रतिपरीक्षण में ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया कि अपीलार्थी-किराएदार ने माह दिसम्बर, 1986 को किराया उनके अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा कर दिया है, ऐसी सूरत में अपीलार्थी-किराएदार के साक्षीगण ने सर्वप्रथम विचारण के दौरान श्री मान सिंह गुप्ता को किराया अदा करना कहा भी है तो इसका कोई साक्ष्यीय महत्व नहीं है । दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने अभिवचन के अभाव में साक्ष्य पर विचार न किए जाने संबंधी निष्कर्ष सही रूप से दिया है । अभिवचन के अभाव में साक्ष्य पर विचार न करने का निष्कर्ष दिए जाने के उपरान्त विचारण न्यायालय के लिए आवश्यक नहीं था कि वह पत्रावली पर प्रस्तुत साक्ष्य पर गुण-दोष के आधार पर विचार कर किसी तरह का कोई निष्कर्ष देता ।

3. माह दिसम्बर, 1986 का किराया अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा किए जाने का तथ्य प्रमाणित करने का भार अपीलार्थी-किराएदार पर था क्योंकि विचारण के दौरान सर्वप्रथम उसकी ओर से ही ऐसा कथन किया गया । श्री मान सिंह गुप्ता प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी के विचारण के दौरान अधिवक्ता अवश्य थे किन्तु केवल इस कारण उन्हें प्रत्यर्थी-भू-स्वामी का साक्षी होना नहीं माना जा सकता । यह तथ्य उल्लेखनीय है कि विचारण न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र के आधार पर अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता का नाम अपीलार्थी की साक्षी सूची में संयोजित किया गया जिसका सीधा सा अर्थ है कि स्वयं अपीलार्थी-किराएदार श्री मान सिंह गुप्ता को अपने उक्त कथन की पुष्टि के लिए साक्षी के रूप में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता था किन्तु उसके द्वारा ऐसा नहीं किया, ऐसी स्थित में यदि विद्वान् अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा यह निष्कर्ष दिया

गया है कि अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को साक्षी के रूप में प्रस्तुत करने का दायित्व अपीलार्थी-किराएदार पर था तथा इस अभाव में उसके विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष लिया जाना चाहिए, प्रकरण के तथ्यों व परिस्थितियों की रोशनी में गलत नहीं माना जा सकता । ऐसी सूरत में विधि के दोनों सारभूत प्रश्न अपीलार्थी-किराएदार के विरुद्ध एवं प्रत्यर्थीगण के पक्ष में निस्तारित किए जाने चाहिए । किराया अदायगी में किराएदार द्वारा व्यतिक्रम किया जाना सदैव भू-स्वामी को ही प्रमाणित करना होता है तथा वर्तमान प्रकरण में प्रत्यर्थी-भू-स्वामी पूर्ण रूप से सफल रहा है । किन्तु माह दिसम्बर, 1986 का किराया श्री मान सिंह गुप्ता को अदा करना अपीलार्थी-किराएदार का विशिष्ट कथन है जिसे उसे ही प्रमाणित करना था ।

4. वादोत्तर में इस आशय का अभिवचन नहीं लिया गया कि माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 तक का किराया मनीआर्डर के माध्यम से प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को प्रेषित किया गया किन्तु उन्होंने मनीआर्डर प्राप्त नहीं किया जिस पर न्यायालय में किराया जमा करवाया । इस तथ्य के संबंध में अभिवचन न लेने से प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को प्रति उत्तर (Rejoinder) प्रस्तुत कर अपीलार्थी के कथन का खण्डन करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ । अभिवचनों के अभाव में इस संबंध में अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य विचारणीय नहीं है, जिसे विद्वान् अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा भी माना गया है । यदि अपीलार्थी-किराएदार द्वारा मनीआर्डर के माध्यम से किराया प्रेषित किया जाता तो कोई कारण नहीं था कि दिनांक 21 मार्च, 1990 को प्रस्तुत वादोत्तर में इस बारे में अभिकथन नहीं किया जाता । इस अभाव में प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के इस कथन की पुष्टि होती है कि न तो मनीआर्डर के माध्यम से किराया भेजा गया और न ही उसने किराया लेने से मना किया । प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के इस कथन की भी पुष्टि होती है कि प्रदर्श ए-28 एवं ए-29 कूटरचित प्रलेख है जिन्हें अपीलार्थी-किराएदार ने अपने स्तर पर तैयार किया है । यदि वास्तव में मनीआर्डर के माध्यम से किराया प्रेषित किया जाता तो प्रदर्श ए-29 पर डाक विभाग के कर्मचारी के हस्ताक्षर, तिथि तथा मोहर अवश्य होती । अन्यथा भी अपीलार्थी-किराएदार को एक साथ छः माह का किराया मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित करने की अधिकारिता नहीं थी । यदि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने माह जनवरी, 1987 का किराया

व्यक्तिगत रूप से लेने से इनकार कर दिया था तो इस माह का किराया तुरन्त मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित किया जाना चाहिए था । इस तरह से उसके बाद के माह का देय किराया मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित किया जाना चाहिए था किन्तु आपीलार्थी-किराएदार को अधिकार नहीं था कि वह छः माह की अवधि का किराया इकट्ठा कर उसे एक साथ मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित करे । यदि तर्क हेतु यह स्वीकार किया भी जाए कि उक्त छः माह की अवधि का किराया मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित किया गया तो भी प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अधिकारिता थी कि वह एक साथ प्रेषित इस किराए को प्राप्त करने के लिए मना कर दे । मनीआर्डर से छः माह का किराया एक साथ तारीख 17 जुलाई, 1987 को प्रेषित किए जाने का तथ्य स्वयं अपीलार्थी-किराएदार के इस कथन से विरोधाभासी है कि उसने माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 तक की अवधि का किराया दिनांक 9 जुलाई, 1987 को पूर्व वाद में न्यायालय में जमा कराया । अधिनियम की धारा 13(3) के अधीन पारित आदेश की अनुपालना में माह दर माह किराया निर्धारित अवधि में या तो भू-स्वामी को व्यक्तिगत रूप से अदा किया जा सकता है या न्यायालय में जमा कराया जा सकता है लेकिन मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित नहीं किया जा सकता । इसलिए मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित किराया विधि भुगतान (valid payment) नहीं माना जा सकता है ।

5. चालान/रसीद प्रदर्श ए-21 एवं ए-22 के माध्यम से न्यायालय में जमा कराए गए किराए को भी विधि अनुसार जमा कराया गया (valid payment of deposit) किराया नहीं माना जा सकता । इन प्रलेखों से ज़ाहिर है कि कुल सात माह का किराया 210/- रुपए दिनांक 9 जुलाई, 1987 को पूर्व वाद संख्या 273/80 में जमा करवाया गया । दिनांक 12 दिसम्बर, 1986 को उक्त पूर्व वाद का निस्तारण अंतिम रूप से विचारण न्यायालय द्वारा किए जाने के उपरान्त अपीलार्थी-किराएदार को अधिकारिता नहीं थी कि वह उसके बाद की अवधि का किराया उसी वाद में न्यायालय में जमा करवाता । न्यायालय में किराया जमा करवाने से पूर्व अपीलार्थी-किराएदार के लिए आवश्यक था कि वह अधिनियम की धारा 19-ए में निर्धारित प्रक्रिया की अनुपालना कर न्यायालय में प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर तथा प्रार्थना पत्र के नोटिस प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी को प्रेषित करवाकर

न्यायालय की अनुमति से किराया जमा करवाता किन्तु वर्तमान प्रकरण में उक्त प्रक्रिया की अनुपालना नहीं की गई है । अधिनियम की धारा 19-ए के अधीन न्यायालय में किराया जमा कराने से पूर्व अपीलार्थी के लिए आवश्यक था कि वह किराया मनीआर्डर से प्रेषित करता और नोटिस प्रेषित कर प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के बैंक खाता की मांग करता । यदि यह माना भी जाए कि पूर्व वाद में अधिनियम की धारा 13(3) के अधीन पारित आदेश की अनुपालना में अपीलार्थी-किराएदार को वाद के निस्तारण उपरान्त भी न्यायालय में किराया जमा कराने का अधिकार इस कारणवश था कि विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 12 दिसम्बर, 1986 को पारित निर्णय व डिक्री के विरुद्ध प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा अपील प्रस्तुत कर दी गई थी तो भी अपीलार्थी-किराएदार के लिए आवश्यक था कि वह प्रत्येक माह का किराया अगले माह की 15 तारीख तक न्यायालय में जमा करवाता किन्तु वर्तमान प्रकरण में यह स्वीकृत तथ्य है कि सात माह का किराया रुपए 210/- एक साथ दिनांक 9 जुलाई, 1987 को जमा करवाया गया है । इस तरह से यदि किसी भी कोण से विचारण किया जाए तो प्रदर्श ए-21 व ए-22 के माध्यम से न्यायालय में जमा कराया गया किराया विधिवत रूप से जमा कराए गए किराए की श्रेणी में नहीं माना जा सकता जिसका सीधा सा अर्थ है कि अपीलार्थी-किराएदार ने वाद प्रस्तुती से पूर्व में कम से कम छः माह का किराया अदा नहीं किया ।

6. यह स्वीकृत तथ्य है कि मूल किराएदार श्रीमती पतासी देवी साक्षी के रूप में विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुई तथा उसकी ओर से साक्षी राम प्रकाश भारद्वाज (मुख्तयार आम) साक्षी के रूप में उपस्थित हुआ । यह भी स्वीकृत है कि श्री राम प्रकाश भारद्वाज के पक्ष में मुख्तयार नामा दिनांक 12 मई, 2000 को निष्पादित किया गया, ऐसी सूरत में श्री राम प्रकाश भारद्वाज को दिनांक 12 मई, 2000 से पूर्व के तथ्यों के संबंध में साक्ष्य देने की अधिकारिता नहीं थी । अपने प्रतिपरीक्षण में श्री भारद्वाज ने यद्यपि यह कथन किया है कि वह श्रीमती पतासी देवी के साथ वर्ष 1986 से ही किराएशुदा परिसर में भागीदार के रूप में व्यवसाय कर रहा था । किन्तु उसके द्वारा ऐसा कोई कथन नहीं किया गया है कि अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को माह दिसम्बर, 1986 का किराया अदा करने तथा माह जनवरी, 1987

से जून, 1987 तक का किराया मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित किए जाने की उसे व्यक्तिगत रूप से जानकारी है । प्रदर्श ए-28 व ए-29 के अवलोकन से भी ज़ाहिर नहीं है कि किराया श्रीमती पतासी देवी की ओर से श्री राम प्रकाश भारद्वाज द्वारा भेजा गया, ऐसी सूरत में इस साक्षी द्वारा उक्त तथ्यों के संबंध में जो भी कथन विचारण के दौरान किया गया है, साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है ।

7. अधिनियम की धारा 13(1)(क) के अवलोकन से अधिक से अधिक यह ज़ाहिर है कि यदि किराएदार द्वारा निरन्तर छः माह की अवधि का किराया भू-स्वामी को अदा नहीं किया जाता है तो यह किराया अदायगी में व्यतिक्रम माना जाएगा तथा भू-स्वामी इस आधार पर किराएशुदा परिसर, किराएदार से खाली करवाने का अधिकारी है । किराया व्यतिक्रम के लिए आवश्यक नहीं कि वाद प्रस्तुती से तत्काल पूर्व की छः माह की अवधि का किराया न तो अदा किया जाए और न ही टेण्डर किया जाए । यदि वाद प्रस्तुती तिथि से पूर्व तीन वर्ष की अवधि में किराएदार द्वारा किसी भी छः माह की अवधि के लिए निरन्तर किराया अदा नहीं किया जाता है तो यह निष्कासन का आधार होगा तथा वाद न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है, ऐसी सूरत में यदि दोनों ही अधीनस्थ न्यायालयों ने माह जून, 1987 के बाद किराया अदा होने अथवा न होने के संबंध में किसी तरह का कोई निष्कर्ष न भी दिया है तथा इस अवधि के लिए व्यतिक्रम होना न भी माना जाए तो भी यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी-किराएदार ने किराया अदायगी में व्यतिक्रम नहीं किया है ।

8. आदेश दिनांक 11 मई, 2000 द्वारा न्यायालय ने अधिनियम की धारा 13(3) के अधीन अंतरिम किराया निर्धारण किया तथा अपीलार्थी द्वारा समय-समय पर पूर्व में जमा कराए गए किराए का समायोजन कर प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष दिया कि बकाया (arrear) के रूप में कोई किराया बकाया नहीं है । अंतरिम किराया निर्धारण आदेश का यह अर्थ नहीं है कि न्यायालय ने अंतिम रूप से यह मान लिया कि पूर्व में जमा कराया गया किराया विधि अनुसार है ।

8. हमने योग्य अधिवक्ता पक्षकारान की ओर से प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया, पत्रावलियों, संबंधित विधिक प्रावधानों तथा सुस्थापित विधिक स्थिति का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया ।

9. हमारे मत में अपीलार्थी-किराएदार की ओर से प्रस्तुत यह अपील निम्नलिखित कारणों से अस्वीकार किए जाने योग्य है :–

1. क्योंकि अपीलार्थी द्वारा वादोत्तर में इस आशय का अभिकथन नहीं किया गया कि माह दिसम्बर, 1986 का किराया उसके अधिवक्ता श्री कान्ता प्रसाद शर्मा ने अपीलार्थी की ओर से प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी के अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा कर दिया है तथा श्री मान सिंह गुप्ता ने किराया प्राप्त करने के बावजूद भी रसीद जारी नहीं की बल्कि रसीद जारी करने का आश्वासन देते रहे । उक्त महत्वपूर्ण तथ्य के संबंध में अभिकथन न लिए जाने से प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अपीलार्थी के उक्त कथन का प्रति उत्तर प्रस्तुत कर खण्डन करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ । विधि की सुस्थापित स्थिति है कि अभिकथन के अभाव में साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जा सकता तथा यदि कोई साक्ष्य प्रस्तुत कर भी दी गई है तो उस पर विचार नहीं किया जा सकता । वर्तमान प्रकरण में जब अपीलार्थी-किराएदार द्वारा उक्त तथ्य के संबंध में वादोत्तर में अभिकथन ही नहीं लिया गया हो तो उसे अपने उक्त कथन की पुष्टि में किसी तरह का कोई साक्ष्य पेश करने की अधिकारिता नहीं थी और न ही प्रस्तुत की गई साक्ष्य पर कानूनन विचार कर किसी तरह का निष्कर्ष ही दिया जा सकता है । यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी श्री रवि कुमार माथुर साक्षी के रूप में न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ किन्तु उसे भी प्रतिपरीक्षण के दौरान ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया कि माह दिसम्बर, 1986 का किराया अपीलार्थी-किराएदार की ओर से उसके अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा कर दिया है, ऐसी सूरत में यह तथ्य कतई असंगत है कि अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को किस पक्षकार द्वारा साक्षी के रूप में अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए था अथवा श्री गुप्ता को साक्षी के रूप में न्यायालय के समक्ष पेश किया जाना चाहिए था या नहीं ।

2. अन्यथा भी प्रकरण के समस्त तथ्यों व परिस्थितियों तथा पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य की रोशनी में यह नहीं कहा जा सकता कि श्री मान सिंह गुप्ता को साक्षी के रूप में प्रस्तुत करने का भार सबूत गलत रूप से अपीलार्थी-किराएदार पर डाला गया तथा उसके विरुद्ध गलत ढंग से प्रतिकूल निष्कर्ष अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा लिया

गया । प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा स्पष्ट रूप से इस आशय का अभिकथन एवं साक्ष्य प्रस्तुत की गई है कि माह नवम्बर, 1986 के उपरान्त से वाद प्रस्तुती तक अपीलार्थी-किराएदार ने किराया अदा नहीं कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम किया है जबकि अपीलार्थी-किराएदार द्वारा वादोत्तर में ऐसा कोई अभिकथन नहीं किया गया कि माह दिसम्बर, 1986 का किराया अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा कर दिया गया है । विचारण के दौरान सर्वप्रथम अपीलार्थी की ओर से इस आशय की साक्ष्य प्रस्तुत की गई । यह सही है कि किराएदार द्वारा किराया अदायगी में व्यतिक्रम संबंधी तथ्य को प्रमाणित करने का भार सबूत सदैव भू-स्वामी पर ही होता है किन्तु वर्तमान प्रकरण में जब अपीलार्थी-किराएदार ने विचारण के दौरान सर्वप्रथम यह कथन किया कि माह दिसम्बर, 1986 का किराया उसकी ओर से उसके अधिवक्ता श्री कान्ता प्रसाद शर्मा ने प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा कर दिया है तो अपने इस कथन को प्रमाणित करने का भार भी अपीलार्थी-किराएदार पर ही था । ऐसी सूरत में यदि श्री गुप्ता को साक्षी के रूप में प्रस्तुत न किए जाने से अपीलार्थी के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा लिया गया है तो इसे अनुचित नहीं माना जा सकता । यद्यपि श्री मान सिंह गुप्ता विचारण न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के अधिवक्ता थे किन्तु ऐसा होने मात्र से यह नहीं माना जा सकता कि वे उसके साक्षी भी थे । वादोत्तर में अभिकथन न लिए जाने से प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अपीलार्थी-किराएदार के उक्त कथन का खण्डन करने का अवसर ही नहीं मिला, ऐसी सूरत में अपीलार्थी-किराएदार की ओर से प्रतिरक्षा के रूप में लिए गए उक्त कथन को प्रमाणित करने का भार सबूत स्वयं उसका था न कि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी का । यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि अपीलार्थी-किराएदार की ओर से विचारण न्यायालय के समक्ष प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर निवेदन किया गया कि श्री मान सिंह गुप्ता को उसकी ओर से प्रस्तुत साक्षी सूची में संयोजित किया जाए । अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत इस प्रार्थना पत्र को स्वीकार कर श्री मान सिंह गुप्ता का नाम साक्षी के रूप में अपीलार्थी-किराएदार साक्षी सूची में संयोजित किया गया किन्तु उसके बावजूद भी उसने श्री गुप्ता को साक्षी के रूप में प्रस्तुत करने का कोई प्रयास नहीं किया, ऐसी सूरत में यह नहीं कहा जा सकता कि श्री मान सिंह गुप्ता को साक्षी के रूप में प्रस्तुत करने का भार सबूत गलत रूप से अपीलार्थी-किराएदार पर डाला

गया । यह सही है कि माह दिसम्बर, 1986 से पूर्व अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता ने प्रत्यर्थी-भू-स्वामी की ओर से समय-समय पर किराया प्राप्त रसीदें जारी की हैं किन्तु केवल इस कारणवश ऐसी कोई उपधारणा कायम नहीं की जा सकती कि माह दिसम्बर, 1986 का किराया भी उन्होंने प्राप्त किया किन्तु रसीद जारी नहीं की । यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि सामान्यतः किसी विशेष माह का किराया अगले माह में अदा किया जाता है तथा इस कारण माह दिसम्बर, 1986 का किराया माह जनवरी, 1987 में देय था । इस स्वीकृत स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए कि पूर्व वाद अंतिम निस्तारण दिनांक 12 दिसम्बर, 1986 को हो गया था, यह तथ्य माने जाने योग्य नहीं है कि उसके बाद माह दिसम्बर, 1986 का किराया अपीलार्थी-किराएदार की ओर से अधिवक्ता श्री मान सिंह गुप्ता को अदा किया गया किन्तु उन्होंने रसीद जारी नहीं की, विशेष रूप इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि अपीलार्थी की ओर से स्पष्ट नहीं किया गया है कि किराया किस तिथि को दिया गया ।

3. अपीलार्थी-किराएदार का यह तर्क भी विधिसम्मत नहीं है कि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने माह जनवरी, 1987 से मई, 1987 यानि पांच माह का किराया अदा न होना वादपत्र में अभिलिखित किया है । दिनांक 11 अप्रैल, 1989 को प्रस्तुत वादपत्र में स्पष्ट रूप से अभिलिखित किया गया है कि अपीलार्थी-किराएदार ने माह नवम्बर, 1986 तक का किराया ही अदा किया है तथा उसके उपरान्त वाद प्रस्तुती तक छः माह से अधिक की अवधि का किराया अदा न कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम किया है । यह सही है कि वादपत्र के चरण संख्या-10 में यह अभिकथन किया गया है कि वाद प्रस्तुती हेतु वाद कारण दिनांक 1 जून, 1987 को उत्पन्न हुआ किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने स्वीकार किया कि माह मई, 1987 तक का किराया ही अपीलार्थी-किराएदार की ओर बकाया है । राजस्थान परिसर (किराया एवं निष्कासन नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13(1)(क) के अनुसार यदि किराएदार द्वारा छः माह का किराया अदा नहीं किया जाता है तो यह निष्कासन का एक आधार है । वर्तमान प्रकरण में स्पष्ट है कि जब अपीलार्थी-किराएदार ने माह दिसम्बर, 1986 से माह मई, 1987 तक की छः माह की अवधि का निरन्तर किराया प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अदा नहीं

किया तो इस अवधि के समाप्त होते ही दिनांक 1 जून, 1987 को उक्त आधार पर निष्कासन के लिए वाद कारण उत्पन्न हो गया तथा इस कारणवश प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा वादपत्र के चरण संख्या-10 में अभिलिखित किया गया कि वाद प्रस्तुती हेतु वाद कारण दिनांक 1 जून, 1987 को उत्पन्न हुआ है । किराएशुदा परिसर से किराएदार के निष्कासन हेतु किराया अदायगी में व्यतिक्रम के आधार पर वाद कारण उत्पन्न होना तथा उसकी ओर से छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया बकाया होना पृथक्-पृथक् तथ्य है । विधि की सुस्थापित स्थिति है कि यदि किराएदार द्वारा छः माह की अवधि का किराया निरन्तर भू-स्वामी को अदा नहीं किया जाता है तो यह अवधि समाप्त होते ही किराया अदायगी में व्यतिक्रम का आधार भू-स्वामी के पक्ष में उत्पन्न हो जाता है तथा उसे अधिकार है कि वह वाद कारण उत्पन्न होने के बाद निर्धारित अवधि में निष्कासन हेतु वाद किराएदार के विरुद्ध प्रस्तुत करे । वर्तमान प्रकरण में भी प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने इस कारणवश दिनांक 1 जून, 1987 को वाद प्रस्तुती हेतु वाद कारण उत्पन्न होना अभिलिखित किया है । यहां इस तथ्य का उल्लेख किया जाना उचित होगा कि स्वयं अपीलार्थी-किराएदार का कथन है कि उसने माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 का किराया मनीआर्डर से प्रत्यर्थी को प्रेषित किया तथा जब उसने मनीआर्डर लेने से मना कर दिया तो दिनांक 9 जुलाई, 1987 को जून, 1987 तक का किराया न्यायालय में जमा करवाया । जब स्वयं अपीलार्थी-किराएदार अपनी ओर माह जून, 1987 तक का किराया बकाया होना स्वीकार कर रहा है तो उसे यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि वादपत्र के अनुसार उसके विरुद्ध माह मई, 1987 तक का ही किराया बकाया था । वाद माह अप्रैल, 1989 में प्रस्तुत किया गया । वाद कारण सर्वप्रथम दिनांक 1 जून, 1987 को उत्पन्न हुआ जो वाद प्रस्तुती तक निरन्तर जारी रहा ।

4. यद्यपि पत्रावली पर विद्यमान साक्ष्य तथा विशेष रूप से अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रस्तुत रसीद/चालान प्रदर्श ए-21 व प्रदर्श ए-22 से ज़ाहिर है कि उसने 7 माह का किराया दिनांक 9 जुलाई, 1987 को पूर्व वाद संख्या-273/1980 में संबंधित न्यायालय में जमा करवाया किन्तु इस प्रकार से जमा कराए गए किराए को विधिवत नहीं माना जा सकता । यह सही है कि पूर्व वाद में दिनांक 12 दिसम्बर, 1986 को

पारित निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने अपील प्रस्तुत की तथा उसका अंतिम निस्तारण दिनांक 28 मई, 1994 को हुआ । यह भी सही है कि भू-स्वामी द्वारा प्रस्तुत अपील के विचाराधीन होने के दौरान किराएदार पर दायित्व है कि वह विचारण न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 13(3) के अधीन पारित अंतिम किराया निर्धारण आदेश की अनुपालना में माह दर माह किराया अपील के विचारण के दौरान भी न्यायालय में जमा करवाए किन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि यह किराया अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन प्रदत्त प्रक्रिया के अनुसार निर्धारित अवधि में जमा करवाया जाए । यद्यपि यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि दिनांक 12 दिसम्बर, 1987 को पारित निर्णय व डिक्री के विरुद्ध प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा अपील कब प्रस्तुत की गई तथा उसमें पूर्व वाद में विचारण न्यायालय द्वारा किराया व्यतिक्रम के संबंध में दिए गए निष्कर्ष को चुनौती दी गई अथवा नहीं, किन्तु तर्क हेतु यह स्वीकार भी किया जाए कि प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने किराया व्यतिक्रम के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा पूर्व वाद में दिए गए निष्कर्ष को चुनौती देते हुए अपील प्रस्तुत की थी किन्तु फिर भी अपीलार्थी-किराएदार के लिए आवश्यक था कि वह माह दिसम्बर, 1986 का किराया अधिनियम की धारा 13(4) के अनुसार निर्धारित 15 दिवस की अवधि में यानि दिनांक 15 जनवरी, 1987 तक या तो प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अदा करता अथवा न्यायालय में जमा करवाता तथा इसी तरह से माह जनवरी तथा उसके बाद के प्रत्येक माह का किराया अगले माह की 15 तारीख तक जमा करवाता किन्तु यह स्वीकृत तथ्य है कि अपीलार्थी-किराएदार ने प्रदर्श ए-21 एवं ए-22 के माध्यम से सात माह, माह दिसम्बर, 1986 से माह जून, 1987 तक का किराया एक साथ दिनांक 9 जुलाई, 1987 को न्यायालय में जमा करवाया । माह दिसम्बर, 1986 से माह जून, 1987 तक की अवधि का किराया विधिवत रूप से जमा न करवाने से यह माना जाएगा कि अपीलार्थी-किराएदार ने किराया अदायगी में द्वितीय व्यतिक्रम किया है तथा इस कारणवश प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को नया वाद उसके विरुद्ध प्रस्तुत करने की अधिकारिता थी । अपीलार्थी-किराएदार यह कहने का अधिकारी नहीं है कि उसने वर्तमान वाद प्रस्तुती से पूर्व उक्त सात माह का किराया दिनांक 9 जुलाई, 1987 के पूर्व वाद में पारित अंतरिम किराया निर्धारण आदेश की अनुपालना में न्यायालय में जमा करवा दिया था तथा उसके लिए आवश्यक नहीं था कि वह इस अवधि का किराया

व्यक्तिगत रूप से प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अदा करता या मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित करता अथवा अधिनियम की धारा 19-क के अधीन न्यायालय में जमा कराता तथा ऐसी सूरत में उक्त अवधि के लिए वाद कारण प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के पक्ष में उत्पन्न ही नहीं हुआ ।

5. जहां तक माह जनवरी, 1987 से माह जून, 1987 तक की छः माह की अवधि का किराया 180/- रुपए अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को मनीआर्डर प्रदर्श ए-28 एवं प्रदर्श ए-29 के माध्यम से प्रेषित करने तथा प्रत्यर्थी द्वारा उसे न लेने का प्रश्न है, अपीलार्थी-किराएदार के इस कथन को इस कारणवश विचारित नहीं किया जा सकता क्योंकि इस संबंध में किसी तरह का अभिकथन वादोत्तर में नहीं लिया गया है और न ही प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को प्रतिपरीक्षण के दौरान ही इस संबंध में सुझाव दिया गया है । जैसा पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि विधि की सुस्थापित स्थिति है कि ऐसे किसी तथ्य के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत नहीं की जा सकती और न ही प्रस्तुत की गई साक्ष्य को विचार में लिया जा सकता, जिस तथ्य के संबंध में अभिकथन नहीं लिया गया है । दोनों ही अधीनस्थ न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निष्कर्ष दिया है कि अभिकथन के अभाव में अपीलार्थी-किराएदार की ओर से प्रस्तुत इस साक्ष्य पर विचार नहीं किया जा सकता कि उक्त अवधि का किराया उसने मनीआर्डर के माध्यम से प्रेषित किया किन्तु प्रत्यर्थी-भू-स्वामी ने लेने से इनकार कर दिया ।

6. अन्यथा भी पत्रावली पर विद्यमान साक्ष्य की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा उक्त तथ्य के संबंध में दिए निष्कर्ष को अनुचित व गलत नहीं माना जा सकता । अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रस्तुत रसीद प्रदर्श ए-29 पर न तो डाक विभाग के कर्मचारी के हस्ताक्षर हैं न ही उस तिथि का अंकन है जब प्रत्यर्थी-भू-स्वामी द्वारा मनीआर्डर लेने से इनकार किया गया और न ही डाक विभाग की मोहर इस रसीद पर अंकित है । वादोत्तर में अभिकथन न लिए जाने तथा प्रतिपरीक्षण में सुझाव न दिए जाने से प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अपीलार्थी-किराएदार के इस कथन का खण्डन करने का अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ कि उक्त अवधि का किराया मनीआर्डर के माध्य से प्रेषित किया तथा भू-स्वामी ने लेने से इनकार कर दिया । ऐसी सूरत में रसीद प्रदर्श ए-29 पर उक्त तथ्यों का स्पष्ट रूप से अंकन न होने

से अपीलार्थी-किराएदार पर दायित्व था कि वह डाक विभाग के उस कर्मचारी को साक्षी के रूप में न्यायालय के समक्ष पेश करता, जो प्रत्यर्थी-भू-स्वामी के पास मनीआर्डर लेकर गया ।

7. यह सही है कि अधिनियम की धारा 13(3) के अधीन पारित अंतरिम किराया निर्धारण आदेश दिनांक 11 मई, 2000 द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष दिया गया कि अपीलार्थी-किराएदार के विरुद्ध माह अप्रैल, 2000 तक कोई अवशेष नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि प्रकरण के उस प्रक्रम पर विचारण न्यायालय ने अंतिम रूप से यह मान लिया कि किराएदार ने वाद प्रस्तुती से पूर्व छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को अदा न कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम नहीं किया है । आदेश दिनांक 11 मई, 2000 के अवलोकन से ज़ाहिर है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी-किराएदार द्वारा समय-समय पर अदा किए गए अथवा जमा कराए गए किराए का समायोजन माह अप्रैल, 2000 तक करते हुए यह निष्कर्ष दिया कि माह अप्रैल, 2000 तक ऐसा कोई किराया शेष नहीं है जिसकी अदायगी अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को की जानी है । यह निष्कर्ष इस सीमित प्रयोजन के लिए दिया गया कि क्या उक्त माह तक कोई किराया अवशेष है जिसकी अदायगी प्रत्यर्थी-भू-स्वामी को की जानी है । विधि की सुस्थापित स्थिति है कि अधिनियम की धारा 13(3) के अधीन अंतरिम किराया निर्धारण केवल इस प्रयोजन के लिए किया जाता है कि किराएदार की ओर से किराया निर्धारण आदेश की तिथि तक कितना बकाया है तथा वाद के दौरान उसे किस दर से किराया अदा करना है । प्रकरण के इस प्रक्रम पर इस प्रश्न पर अंतिम रूप से कोई निष्कर्ष नहीं दिया जाता कि वाद प्रस्तुती से पूर्व किराएदार ने छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया अदा न कर व्यतिक्रम किया है अथवा नहीं । इस प्रश्न का निस्तारण पक्षकारान की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर वाद के अंतिम निस्तारण के समय किया जाता है ।

8. यदि अधिनियम की धारा 13(1)(क) का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जाए तो अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि किराएदार को उक्त प्रावधान के अधीन किराया अदायगी में व्यतिक्रम का दोषी तभी माना जाएगा जब यह पाया जाए की उसे छः

माह या अधिक अवधि का निरन्तर किराया भू-स्वामी को न तो अदा किया और न ही टेण्डर किया । उक्त प्रावधान के अनुसार यदि वाद प्रस्तुती से पूर्व तीन वर्ष की अवधि के दौरान किराएदार द्वारा किसी भी समय निरन्तर छः माह की अवधि का किराया अदा नहीं किया जाता है तो ऐसा न होना किराया अदायगी में व्यतिक्रम होगा तथा इस आधार पर वाद प्रस्तुत किया जा सकता है । यह ज़ाहिर नहीं है कि उक्त प्रावधान के अधीन किराया व्यतिक्रम तभी माना जाएगा जब यह पाया जाए कि वाद प्रस्तुती से तत्काल पूर्व छः माह अथवा अधिक अवधि का किराया किराएदार ने न तो अदा किया और न ही टेण्डर किया । ऐसी सूरत में यदि वर्तमान प्रकरण में माह जुलाई, 1987 से वाद प्रस्तुती तिथि तक की अवधि के किराए अदायगी संबंध में दोनों ही अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा किसी तरह का कोई निष्कर्ष न भी दिया गया है तो यह नहीं माना जा सकता कि अपीलार्थी-किराएदार को किराया व्यतिक्रम का दोषी नहीं माना जा सकता एवं उनका निष्कर्ष विधिविरुद्ध होने से अपास्त किए जाने योग्य है । माह दिसम्बर, 1986 से माह जून, 1987 तक की अवधि के किराए में व्यतिक्रम संबंधी दिया गया निष्कर्ष ही अपीलार्थी-किराएदार के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री पारित करने के लिए पर्याप्त है ।

10. अतः उक्त समस्त विवेचन के आधार पर अपीलार्थी-किराएदार द्वारा प्रस्तुत यह अपील सारहीन होने से अस्वीकार कर खारिज की जाती है । अपीलार्थी-किराएदार को आदेश दिया जाता है कि वह किराएशुदा परिसर को खाली कर आज से दो माह की अवधि में उसका आधिपत्य प्रत्यर्थीगण-भू-स्वामी को सम्भलाए ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

———

आरती देवी (श्रीमती)

बनाम

वीरेन्द्र कटोच

तारीख 29 मार्च, 2012

न्यायमूर्ति देव दर्शन सूद

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(ia) और 28 – पति-पत्नी के बीच विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं करना अर्थात् पत्नी द्वारा विवाहयेत्तर सम्भोग करने से मना करना – पत्नी द्वारा पति एवं उसके कुटुम्ब सदस्यों के प्रति असामान्य, क्रूरता और गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार करना तथा उन्हें दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी देना – पत्नी द्वारा बिना युक्तियुक्त कारण से वैवाहिक गृह का त्याग करना – इन परिस्थितियों में पत्नी द्वारा पति के प्रति क्रूरता और अभित्यजन साबित समझा जाएगा और पति के पक्ष में पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री कायम रखे जाने योग्य होगी ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी-पति ने एक याचिका संस्थित की थी जिससे यह अपील इन अभिवचनों के आधार पर उद्भूत हुई है कि तारीख 30 अप्रैल, 2002 को पक्षकारों के बीच हिन्दू प्रथाओं, कृत्यों और अनुष्ठानों के अनुसार विवाह हुआ था । उनका विवाह होने के पश्चात् वे पति और पत्नी के रूप में एक वर्ष से अधिक अवधि तक अपने वैवाहिक गृह में अपीलार्थी, प्रत्यर्थी (पति, विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष अर्जीदार) के साथ रही थी । इसी बीच में, वह प्रायः अपने माता-पिता के पास जाती रहती थी । प्रत्यर्थी ने यह अभिवाक् किया कि पक्षकारों के बीच कोई सहवास नहीं हुआ था और विवाह परिपक्व नहीं हुआ था । वह अपनी वैवाहिक बाध्यताओं को पूरी नहीं कर रही थी, गृहस्थी के कार्यों में दक्ष नहीं थी और पत्नी के रूप में अपने कर्तव्यों को करने से इनकार कर दिया था । वह खाना नहीं बनाती थी और जब उसे ऐसा करने के लिए कहा जाता था तो वह सुस्पष्टतः ऐसा करने से इनकार कर देती थी । प्रत्यर्थी को उसने स्वयं और अपीलार्थी के लिए पृथक् आवास की व्यवस्था करने के लिए बाध्य किया था । यहां भी उसने यह कहते हुए गृहस्थी के कार्यों को करने से इनकार कर दिया था कि वह अपनी बी. एड परीक्षा पास करना चाहती

है । तारीख 5 मई, 2003 को अपने पिता के कहने पर वैवाहिक गृह छोड़ दिया था । वह संभाव्यतः गुवाहाटी (असम) चली गई । अर्जीदार के साथ उसका व्यवहार असामान्य, क्रूर और गैर-जिम्मेदाराना था । उसने प्रत्यर्थी को विवाहयेत्तर संभोग करने की अनुमति नहीं दी । उसने यह भी उद्घोषणा की कि वह प्रत्यर्थी और उसके कुटुम्ब सदस्यों को दांडिक मामलों में फंसा देगी । प्रत्यर्थी ने यह दावा किया है कि उसने वैवाहिक गृह इस आशय से छोड़ दिया कि उनके संबंध स्थायी रूप से समाप्त हो जाएं । अपीलार्थी ने याचिका फाइल करते हुए यह कथन किया कि वह तीन वर्षों से प्रत्यर्थी के साथ सहवास, अपनी वैवाहिक बाध्यताओं का कर्तव्यपूर्वक अनुपालन कर रही थी । पक्षकारों के बीच विवाह परिपक्व हो गया था किन्तु प्रत्यर्थी के कुटुम्ब सदस्यों ने ही अपर्याप्त मात्र में दहेज लाने के लिए उसके साथ क्रूरता का व्यवहार करते थे और उस पर छींटा-कशी करते थे । प्रत्यर्थी ने ही उसे किराए के मकान में पृथक् रूप से रहने के लिए बाध्य किया इस कारण से कि वह ऐसी स्थितियां पैदा कर रही है जिससे कि वैवाहिक गृह का माहौल दूषित हो रहा है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्यों के आधार पर इसमें के प्रत्यर्थी का दावा डिक्री कर दिया । अपने निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 वीरेन्द्र कटोच, अर्जीदार के कथनों पर विचार किया जिसने यह कथन किया कि उसके विवाद के पश्चात् प्रत्यर्थी उसके साथ लगभग एक वर्ष तक रही थी जिसके दौरान उसने संभोग करने की अनुमति नहीं दी थी, वह गृहस्थी के कार्यों को अच्छी तरह से नहीं करती थी, वह अर्जीदार और उसके कुटुम्ब सदस्यों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती थी, उसने बिना उसकी अनुमति लिए अपनी बी. एड परीक्षा की पढ़ाई करने के लिए गुवाहाटी जाने के लिए उसका गृह छोड़ दिया । उसके निवेदन करने के बावजूद भी वह वैवाहिक गृह में वापस नहीं लौटी । पक्षकारों के बीच विवाह पूरी तरह से टूट गया था । तारीख 9 अक्तूबर, 2003 को अर्जीदार ने उसके साथ क्रूरता का व्यवहार करने के लिए एक नोटिस प्रदर्श अभि. सा. 1/ए जारी किया था । अभि. सा. 2 श्री अमर सिंह, प्रत्यर्थी का पिता ने यह कथन किया कि अपीलार्थी गृहस्थी कार्य को अच्छी तरह से नहीं करती थी, कुटुम्ब के लिए भोजन तैयार नहीं कर सकती थी और अर्जीदार को पृथक् निवास में रहने के लिए दबाव डालती थी । अभि. सा. 3 श्री चरन दास ने यह कथन किया कि प्रत्यर्थी ने अपने गृह के पास किराए पर एक मकान ले लिया था । प्रत्यर्थी और अपीलार्थी कुछ समय के लिए अपने गृह में रुके थे । वह कोई भी गृहस्थी कार्य, कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ

रही और इन परिस्थितियों में स्वयं प्रत्यर्थी को ही इन सभी कार्यों को करना पड़ता था । वह प्रत्यर्थी को अपने माता-पिता का गृह छोड़ने के लिए बाध्य किया करती थी । इसके विरुद्ध, अपीलार्थी, प्रत्यर्थी-साक्षी 1 के रूप में उपस्थित होते हुए यह कथन किया कि विवाह के लगभग 15 दिनों तक उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता रहा किन्तु उसके पश्चात् उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाने लगा और दहेज आदि की मांग भी की जाने लगी थी । उसे पृथक् रहने के लिए बाध्य किया गया । उसने इस बात पर जोर दिया कि पक्षकारों के बीच विवाह पूर्णता को प्राप्त कर लिया था । इस साक्ष्य का समर्थन अपीलार्थी के पिता श्री संतोष कुमार, प्रत्यर्थी-साक्षी 2 द्वारा भी किया गया । प्रत्यर्थी-साक्षी 3 अवतार सिंह, प्रधान, ग्राम पंचायत ने यह कथन किया कि उसने पक्षकारों के बीच मतभेद सुलझाने के मुद्दे पर हस्तक्षेप किया था । साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी द्वारा अधिरोपित तंग और परेशान करने के आरोप सिद्ध नहीं होते हैं, तथा अभिलेख पर दहेज की मांग भी साबित नहीं हुई है । ये आरोप मिथ्या हैं । इन निष्कर्षों के साथ विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पति की मांग पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर कर ली थी । अतएव, यह अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, पक्षकारों के साक्ष्य पर विचार करने के पूर्व, अभिवचनों को उल्लिखित किया जा सकता है । विचारण न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी, अर्जीदार ने यह अभिवाक् किया है कि विवाह कभी भी पूर्णता को प्राप्त नहीं किया था, अपीलार्थी मात्र लगभग दो महीने ही उसके साथ रही जिसके पश्चात् उसने वैवाहिक गृह छोड़ दिया था । उसने कभी भी गृहस्थी कर्तव्यों का अनुपालन नहीं किया । कभी भी किसी संसूचना का उत्तर नहीं दिया अपितु इसके बजाय उसके साथ बात करना अत्यधिक कठिन हो गया था, प्रत्यर्थी पृथक्तः किराए के निवास में रहने लगा था, उसने कभी भी अपने साथ सहवास नहीं करने दिया और अपनी वैवाहिक बाध्यताओं को पूरा नहीं किया । तारीख 5 मई, 2003 को इस बहाने से अपने पिता के साथ वैवाहिक गृह छोड़ दिया कि वह गुवाहाटी में बी. एड की परीक्षा देने के लिए जा रही है किन्तु उसके पश्चात् वह वापस नहीं आयी । वह गृहस्थी कार्यों में रुचि नहीं लेती थी, उसने उसके कुटुम्ब को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी दी । इन कार्यों से संबंधित नोटिस भी उस पर तामिल की गई थी । उत्तर में, लगाए गए विनिर्दिष्ट आरोपों से

साधारणतः इनकार किया गया । अपीलार्थी ने यह कथन किया कि विवाह पूर्णता को उस समय प्राप्त कर लिया था जब वह तीन वर्षों तक प्रत्यर्थी के साथ निरन्तर रही थी । अन्य सभी निवेदनों से भी प्रत्यर्थी की कल्पनाओं पर आधारित होने के नाते इनकार किया गया । इन अभिवचनों को कुछ विस्तारपूर्वक उल्लिखित किया गया है क्योंकि वे पक्षकारों के साक्ष्य की विवेचना करते समय सुसंगत होंगे । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के पते के साथ ही उसके पिता के पते पर भेजी गई तारीख 9 अक्तूबर, 2003 की नोटिस प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को अभिलेख पर साबित किया । इस मामले में साक्ष्य को विद्वान् न्यायालय द्वारा तारीख 8 जनवरी, 2007 को अभिलिखित किया गया जिसके पश्चात्, अपीलार्थी के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाहियां अपास्त कर दी गईं और मामले में आगे कार्यवाही अग्रेषित की गई । पक्षकारों के साक्ष्य को उल्लिखित करते समय न्यायालय यह नोट करना चाहता है कि अपीलार्थी ने यह स्वीकार किया है कि उसने गुवाहाटी/असम में बी. एड पाठ्यक्रम में दाखिला लिया था किन्तु उसने अभिलेख पर इस बारे में कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया । उसके बाद उसने यह कथन किया कि उसने इस पाठ्यक्रम में वर्ष 2003 में दाखिला लिया था क्योंकि प्रत्यर्थी ने उसे नौकरी छोड़ने के लिए दबाव डाला था । वह परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गई और उसके बाद वह पुनः वापस चली गई और लगभग एक वर्ष तक गुवाहाटी में पढ़ाई करती रही । यह साबित नहीं किया गया है कि किस कालेज/संस्था में उसने दाखिला लिया था, वह कब गुवाहाटी गई और अपनी पढ़ाई के दौरान कहां रुकी थी । वह इस अवधि के पश्चात् वापस आई थी किन्तु वह वैवाहिक गृह में नहीं रुकी थी । प्रत्यर्थी-साक्षी 3 अवतार सिंह, पूर्व ग्राम प्रधान, ग्राम पंचायत, बेला ने यह कथन किया कि प्रत्यर्थी उसके ग्राम का निवासी है । उसे अपीलार्थी के पिता ने यह सूचित किया था कि पक्षकारों के बीच वैवाहिक मामलों में कुछ विवाद है और इन परिस्थितियों में उसे हस्तक्षेप करना चाहिए और मामले का समाधान निकालना चाहिए । इन परिस्थितियों में, पूर्णरूपेण दोनों पक्षकारों के साक्ष्य पर विचार किया जाना चाहिए । जहां तक प्रथम आरोप का संबंध है यह है कि विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं किया है इस बारे में बेहतर साक्ष्य पक्षकार ही दे सकते हैं । किन्तु, इस बारे में उनका सुस्पष्ट कथन नहीं है । निस्संदेह, जब इस पहलू पर आरोपों और प्रत्यारोपों के द्वारा इनकार किया जाता है तो इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए विशेषज्ञ चिकित्सीय साक्ष्य का अवलंब लिया जा सकता है कि कौन सा पक्षकार सही बोल रहा है । न्यायालय ने इस पहलू पर प्रकथन किया है और निर्णय में निष्कर्ष निकालने के पूर्व मुझे यह

महसूस होता है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश ने सही ही यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को त्यक्त कर दिया था और यह कि उसने कभी भी अपने वैवाहिक गृह वापस लौटने की कोशिश नहीं की । यह तथ्य कि अपीलार्थी बी. एड पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए असम चली गई थी, जिसके बारे में उसने अभिलेख पर कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया है किन्तु इस तथ्य से जिसे पक्षकारों ने स्वीकार किया है, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं है कि उसने वास्तव में, इस बारे में प्रत्यर्थी को सूचित किया था और उसकी सहमति से ही असम गई थी । जैसा न्यायालय द्वारा उल्लिखित किया जा चुका है कि यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि संस्था/कालेज जहां वह पाठ्यक्रम की पढ़ाई कर रही थी अथवा जहां उसने पत्राचार अभ्यर्थी के रूप में नामांकन कराया था । विश्वविद्यालय/संस्था/ कालेज की शुल्क संदाय रसीद, अनुक्रमांक का आबंटन, दाखिला का कोई सबूत या उसके द्वारा कक्षा में उपस्थित होने वाले कोई पत्राचार सबूत या विशिष्ट तारीख/तारीखों को परीक्षा में उपस्थित होने के बारे में कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया गया है । वह पूरे एक वर्ष गुवाहाटी में रुकी थी किन्तु कहां रुकी थी और किसके साथ रुकी थी, इस बारे में कोई सबूत नहीं है । इन परिस्थितियों में, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रत्यर्थी का साथ छोड़ने का तथ्य अर्थात् अभित्यजन का आशय बड़े पैमाने पर मौजूद था । इस कथन से यह सिद्ध होता है कि वह पूरे एक वर्ष अपने वैवाहिक गृह से दूर रही । इस बारे में अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं है कि इस अवधि के पश्चात् वह वास्तव में अपने वैवाहिक गृह में अपने पति के साथ वस्तुतः रहने लगी थी । अभिलेख पर के साक्ष्यों से न्यायालय का यह भी निष्कर्ष है कि उसने अर्जीदार और उसके कुटुम्ब सदस्यों के विरुद्ध यह बहसी और लापरवाह आरोप लगाए हैं कि वे उसे पर्याप्त मात्रा में दहेज न लाने के लिए तंग और परेशान करते थे तथा प्रत्यर्थी के कुटुम्ब सदस्यों की प्रताड़ना पर ही वह वैवाहिक गृह छोड़ने के लिए बाध्य हुई थी । न्यायालय का यह भी निष्कर्ष है कि अभि. सा. 3 चरण दास ने इन बातों के बारे में कोई स्पष्ट कथन नहीं किया है कि उसने एक कमरा किराए पर दिया था जिसमें अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों रहते थे । इन परिस्थितियों में, न्यायालय के विवेक में इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है तथा अभिलेख पर के साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी ने कभी भी प्रत्यर्थी का साथ छोड़ने के लिए नहीं कहा था । प्रथम पहलू का उल्लेख करते हुए, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि सम्पूर्ण परिस्थितियों में,

अपीलार्थी के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है इन कारणों से कि घटनाओं का वर्णन और मामलों का कथन स्वाभाविक है । यह तथ्य कि अपीलार्थी ने यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है कि (क) कि उसका वैवाहिक गृह में अनुपस्थिति प्रत्यर्थी की सहमति द्वारा अत्यावश्यक थी इस कारण से कि वह उच्चतर अध्ययन हेतु गुवाहाटी जाना चाहती थी और यह कि (ख) यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है कि उसने किसी कालेज/संस्था में दाखिला लिया था जहां वह नियमित या पत्राचार छात्रा थी, साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि जहां वह गुवाहाटी में रुकी थी उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वैवाहिक गृह में उसकी अनुपस्थिति अन्यायोचित है । (पैरा 14, 15, 16, 17, 18, 19 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] (2009) 1 एस. सी. सी. 422 :
सुमन कपूर बनाम **सुधीर कपूर** ; 11

[2008] [2008] 3 उम. नि. प. 10 = (2007) 4 एस. सी. सी. 511 :
समर घोष बनाम **जया घोष** ; 10

[2008] ए. आई. आर. 2008 पंजाब-हरियाणा 95 :
रमन कुमार बनाम **श्रीमती बक्शो थान्डी** । 20

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2008 की एफ. ए. ओ. सं. 618.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 28 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री रमाकांत शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री कन्ता ठाकुर, अधिवक्ता के साथ श्री राजेश मंधोत्रा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति देव दर्शन सूद – यह अपील पत्नी, जो विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी थी, ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की है जिसके द्वारा उन्होंने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 13(1)(ik) के अधीन साबित अभियोगों पर विवाह-

विच्छेद की डिक्री द्वारा पक्षकारों का विवाह विघटित कर दिया था ।

2. प्रत्यर्थी-पति ने एक याचिका संस्थित की थी जिससे यह अपील इन अभिवचनों के आधार पर उद्भूत हुई है कि तारीख 30 अप्रैल, 2002 को पक्षकारों के बीच हिन्दू प्रथाओं, कृत्यों और अनुष्ठानों के अनुसार विवाह हुआ था । उनका विवाह होने के पश्चात् वे पति और पत्नी के रूप में एक वर्ष से अधिक अवधि तक अपने वैवाहिक गृह में अपीलार्थी, प्रत्यर्थी (पति, विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष अर्जीदार) के साथ रही थी । इसी बीच में, वह प्रायः अपने माता-पिता के पास जाती रहती थी । प्रत्यर्थी ने यह अभिवाक् किया कि पक्षकारों के बीच कोई सहवास नहीं हुआ था और विवाह परिपक्व नहीं हुआ था । वह अपनी वैवाहिक बाध्यताओं को पूरी नहीं कर रही थी, गृहस्थी के कार्यों में दक्ष नहीं थी और पत्नी के रूप में अपने कर्तव्यों को करने से इनकार कर दिया था । वह खाना नहीं बनाती थी और जब उसे ऐसा करने के लिए कहा जाता था तो वह सुस्पष्टतः ऐसा करने से इनकार कर देती थी । प्रत्यर्थी को उसने स्वयं और अपीलार्थी के लिए पृथक् आवास की व्यवस्था करने के लिए बाध्य किया था । यहां भी उसने यह कहते हुए गृहस्थी के कार्यों को करने से इनकार कर दिया था कि वह अपनी बी. एड परीक्षा पास करना चाहती है । तारीख 5 मई, 2003 को अपने पिता के कहने पर वैवाहिक गृह छोड़ दिया था । वह संभाव्यतः गुवाहाटी (असम) चली गई । अर्जीदार के साथ उसका व्यवहार असामान्य, क्रूर और गैर-जिम्मेदाराना था । उसने प्रत्यर्थी को विवाहयेत्तर संभोग करने की अनुमति नहीं दी । उसने यह भी उद्घोषणा की कि वह प्रत्यर्थी और उसके कुटुम्ब सदस्यों को दांडिक मामलों में फंसा देगी । प्रत्यर्थी ने यह दावा किया है कि उसने वैवाहिक गृह इस आशय से छोड़ दिया कि उनके संबंध स्थायी रूप से समाप्त हो जाएं ।

3. अपीलार्थी ने याचिका फाइल करते हुए यह कथन किया कि वह तीन वर्षों से प्रत्यर्थी के साथ सहवास, अपनी वैवाहिक बाध्यताओं का कर्तव्यपूर्वक अनुपालन कर रही थी । पक्षकारों के बीच विवाह परिपक्व हो गया था किन्तु प्रत्यर्थी के कुटुम्ब सदस्यों ने ही अपर्याप्त मात्रा में दहेज लाने के लिए उसके साथ क्रूरता का व्यवहार करते थे और उस पर छींटा-कशी करते थे । प्रत्यर्थी ने ही उसे किराए के मकान में पृथक् रूप से रहने के लिए बाध्य किया इस कारण से कि वह ऐसी स्थितियां पैदा कर रही है जिससे कि वैवाहिक गृह का माहौल दूषित हो रहा है ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्यों के आधार पर

इसमें के प्रत्यर्थी का दावा डिक्री कर दिया । अपने निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 वीरेन्द्र कटोच, अर्जीदार के कथनों पर विचार किया जिसने यह कथन किया कि उसके विवाद के पश्चात् प्रत्यर्थी उसके साथ लगभग एक वर्ष तक रही थी जिसके दौरान उसने संभोग करने की अनुमति नहीं दी थी, वह गृहस्थी के कार्यों को अच्छी तरह से नहीं करती थी, वह अर्जीदार और उसके कुटुम्ब सदस्यों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती थी, उसने बिना उसकी अनुमति लिए अपनी बी. एड परीक्षा की पढ़ाई करने के लिए गुवाहाटी जाने के लिए उसका गृह छोड़ दिया । उसके निवेदन करने के बावजूद भी वह वैवाहिक गृह में वापस नहीं लौटी । पक्षकारों के बीच विवाह पूरी तरह से टूट गया था । तारीख 9 अक्तूबर, 2003 को अर्जीदार ने उसके साथ क्रूरता का व्यवहार करने के लिए एक नोटिस प्रदर्श अभि. सा. 1/ए जारी किया था ।

5. अभि. सा. 2 श्री अमर सिंह, प्रत्यर्थी का पिता ने यह कथन किया कि अपीलार्थी गृहस्थी कार्य को अच्छी तरह से नहीं करती थी, कुटुम्ब के लिए भोजन तैयार नहीं कर सकती थी और अर्जीदार को पृथक् निवास में रहने के लिए दबाव डालती थी ।

6. अभि. सा. 3 श्री चरन दास ने यह कथन किया कि प्रत्यर्थी ने अपने गृह के पास किराए पर एक मकान ले लिया था । प्रत्यर्थी और अपीलार्थी कुछ समय के लिए अपने गृह में रुके थे । वह कोई भी गृहस्थी कार्य, कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ रही और इन परिस्थितियों में स्वयं प्रत्यर्थी को ही इन सभी कार्यों को करना पड़ता था । वह प्रत्यर्थी को अपने माता-पिता का गृह छोड़ने के लिए बाध्य किया करती थी ।

7. इसके विरुद्ध, अपीलार्थी, प्रत्यर्थी-साक्षी 1 के रूप में उपस्थित होते हुए यह कथन किया कि विवाह के लगभग 15 दिनों तक उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता रहा किन्तु उसके पश्चात् उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाने लगा और दहेज आदि की मांग भी की जाने लगी थी । उसे पृथक् रहने के लिए बाध्य किया गया । उसने इस बात पर जोर दिया कि पक्षकारों के बीच विवाह पूर्णता को प्राप्त कर लिया था । इस साक्ष्य का समर्थन अपीलार्थी के पिता श्री संतोष कुमार, प्रत्यर्थी-साक्षी 2 द्वारा भी किया गया । प्रत्यर्थी-साक्षी 3 अवतार सिंह, प्रधान, ग्राम पंचायत ने यह कथन किया कि उसने पक्षकारों के बीच मतभेद सुलझाने के मुद्दे पर हस्तक्षेप किया था ।

8. साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी द्वारा अधिरोपित तंग और परेशान करने के आरोप सिद्ध नहीं होते हैं, तथा अभिलेख पर दहेज की मांग भी साबित नहीं हुई है । ये आरोप मिथ्या हैं ।

9. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदनों का उल्लेख करने के पूर्व मेरा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थी, विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुई थी जहां यह अभिवाक् किया गया था कि वह जानबूझकर गृहस्थी कार्य नहीं करती थी और एकपक्षीय साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् प्रत्यर्थी के पक्षकथन को तारीख 21 दिसम्बर, 2004 को एकपक्षीय डिक्री दे दी गई थी । अपीलार्थी द्वारा एकपक्षीय कार्यवाहियों को अपास्त करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक आवेदन इस आधार पर फाइल किया गया कि वह गृहस्थी कार्य नहीं कर रही थी क्योंकि वस्तुतः वह अपनी पढ़ाई करने के संबंध में असम में रह रही थी । वह 2003 में अपने मायके वापस आ गई थी जिसके लिए उसने पुलिस रिपोर्ट आदि फाइल की है । इस आवेदन का विरोध किया गया किन्तु, अन्ततोगत्वा न्यायालय द्वारा इसे तारीख 18 फरवरी, 2005 को इसे संस्थित करने के 3 वर्षों पश्चात् अर्थात् तारीख 15 सितम्बर, 2007 को मंजूर कर लिया गया था । आवेदन में लिए गए आधारों में से एक आधार यह था कि वह समुचित तौर पर गृहस्थी कार्य नहीं कर रही थी क्योंकि उस विशिष्ट समय पर वह पढ़ाई करने के लिए असम गई हुई थी । मैं, इस समय पर यह भी उल्लेख करना चाहता हूं कि यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ नहीं है कि अपीलार्थी वास्तव में, बी. एड की पढ़ाई करने के लिए असम गई हुई थी अथवा वहां से किसी पाठ्यक्रम की पढ़ाई कर रही थी । इस तथ्य को गुवाहाटी विश्वविद्यालय/कालेज/संस्था द्वारा जारी किसी दस्तावेजी साक्ष्य, जैसे दाखिला स्लिप, फीस संदाय की रसीद और डिप्लोमा/अंक पत्र आदि प्रस्तुत करके आसानी से सिद्ध किया जा सकता था । इन तथ्यों के आधार पर ही यह न्यायालय, निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की वैधता का न्यायनिर्णयन करने के लिए मंगा सकता है ।

10. प्रत्यर्थी द्वारा विवाह के विघटन के लिए गए आधार ये हैं – (क) कि उसके साथ क्रूरता का व्यवहार किया गया क्योंकि अपीलार्थी अपने साथ संभोग करने नहीं देती थी । (ख) कि उसने बिना किसी कारण के उसका साथ छोड़ दिया और तंग तथा परेशान करने और दहेज की मांग

आदि करने के बारे में उसके तथा उसके सम्पूर्ण कुटुम्ब के विरुद्ध मिथ्या आरोप लगाए । (ग) सम्पूर्ण कुटुम्ब को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी दी । इन आधारों को अभिलेख पर सिद्ध नहीं किया गया था । क्रूरता की अवधारणा को, यद्यपि न तो किसी अधिनियम में अथवा न ही किसी विधि में परिभाषित किया गया है, फिर भी माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **समर घोष** बनाम **जया घोष**[1] वाले मामले में सविस्तार विचार किया गया । माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारतीय और विदेशी दोनों की निर्णयज विधियों का विस्तारपूर्वक पुनर्विलोकन करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "101. मार्गदर्शन के लिए कभी भी कोई एकरूपीय कसौटी अधिकथित नहीं की जा सकती है । तब भी हम मानवीय आचरण के कुछ उदाहरणों का उल्लेख करना उपयुक्त समझते हैं जो मानवीय क्रूरता के मामले पर चर्चा करते समय सुसंगत हो सकते हैं । निम्न पैराओं में इंगित किए गए उदाहरण केवल दृष्टांतस्वरूप हैं और न कि निःशेषकारी –
>
> (i) पक्षकारों के सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन पर विचार करने पर अत्यंत मानसिक पीड़ा, दुख और वेदना, जिसके कारण पक्षकारों का एक दूसरे के साथ रहना संभव नहीं हो पाएगा । यह मानसिक क्रूरता की व्यापक परिधि के भीतर आएगा ।
>
> (ii) पक्षकारों के सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन का व्यापक रूप से मूल्यांकन करने पर यदि यह प्रचुर रूप से स्पष्ट हो जाता है कि स्थिति ऐसी है कि दुखी किए गए पक्षकार से अन्य पक्षकार के ऐसे आचरण को सहने के लिए और उसके साथ सतत रूप से जीवनयापन करने के लिए नहीं कहा जा सकता है ।
>
> (iii) मात्र ठंडापन या प्यार की कमी से क्रूरता गठित नहीं हो सकती । भाषा में प्रायः रूखापन/कठोरता, विरत भाव दर्शित करना, टीका-टिप्पणी करना, एक ऐसी कोटि के हो सकते हैं जिनके कारण अन्य पक्षकार (पति/पत्नी) के लिए वैवाहिक जीवन पूर्णरूप से असहनीय बन जाए ।
>
> (iv) मानसिक क्रूरता चित्त की एक स्थिति है । गहन

---

[1] [2008] 3 उम. नि. प. 10 = (2007) 4 एस. सी. सी. 511.

वेदना, असंतोष, अन्य पति/पत्नी के आचरण से दूसरे पक्षकार को नैराश्य जो लंबी अवधि तक हो, की भावना मानसिक क्रूरता गठित करती है ।

(v) गाली-गलौज और अपमानकारी व्यवहार का अनवरत रूप से जारी रहना जिससे अन्य पक्षकार को यंत्रणा/असंतोष या जीवन दुःखदपूर्ण हो जाए, यह भी मानसिक क्रूरता गठित करता है ।

(vi) पति/पत्नी का अनवरत अनुचित आचरण और व्यवहार जो वस्तुतः अन्य पक्षकार के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता हो । परिवाद किए गए व्यवहार और उसके परिणामस्वरूप पहुंचा खतरा या आशंका अत्यंत ही घोर और प्रबल होनी चाहिए ।

(vii) अनवरत भयाक्रांत आचरण, नितांत अनदेखी करना या वैवाहिक दयालुता के सामान्य स्तर से पूर्णतया विचलन करना जिसके कारण दूसरे पक्षकार के मानसिक स्वास्थ्य को क्षति पहुंचती हो या उससे त्रुटि करने वाले पक्षकार को अत्यधिक आत्मिक सुख मिलता हो, यह मानसिक क्रूरता गठित करते हैं ।

(viii) आचरण ऐसा होना चाहिए जो ईर्ष्या, स्वार्थता आधिपत्यता से अत्यंत अधिक हो अन्यथा दुख, असंतोष और भावनात्मक रूप से चोट पहुंचाना मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद प्रदान किए जाने के लिए आधार नहीं हो सकते ।

(ix) मात्र छोटी-मोटी कहा-सुनी, झगड़े वैवाहिक जीवन के सामान्य झगड़े जो दिन-प्रतिदिन के जीवन में घटित होते हैं, मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं होंगे ।

(x) सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन का पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए और अनेक वर्षों के दौरान के कुछ एकल उदाहरण क्रूरता गठित नहीं कर सकेंगे । दुर्व्यवहार ऋजुतापूर्वक एक लंबी अवधि तक जारी रहना चाहिए, जिसके दौरान उनके (पति/पत्नी) संबंध इस सीमा तक खराब हो गए हों कि एक पति/पत्नी के कृत्यों और आचरण के कारण व्यथित पक्षकार

उसके साथ और अधिक रहना अत्यंत ही कठिन पाता हो, यह मानसिक क्रूरता गठित कर सकेगा ।

(xi) यदि पति बिना किसी चिकित्सीय कारण के और अपनी पत्नी की सम्मति या उसकी जानकारी के बिना अपना नसबंदी का आपरेशन कराता है या यदि पत्नी बिना किसी चिकित्सीय कारण के या अपने पति की सम्मति या जानकारी के बिना गर्भपात या नसबंदी कराती है तब पति/पत्नी का यह कृत्य मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।

(xii) पति/पत्नी का एकपक्षीय रूप से बिना किसी शारीरिक अक्षमता या विधिमान्य कारण के एक पर्याप्त अवधि तक दूसरे पक्षकार के साथ संभोग करने से इनकार करने का एकपक्षीय विनिश्चय भी मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।

(xiii) पति या पत्नी का विवाह के पश्चात् यह एकपक्षीय विनिश्चय करना कि वह विवाहोपरान्त कोई बच्चा पैदा नहीं करेगा यह भी मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।

(xiv) जहां एक लंबी सतत अवधि तक पति/पत्नी अलग रह रहे हैं वहां यह ऋजुतापूर्वक निष्कर्ष निकाला जा सकेगा कि उनके बीच वैवाहिक संबंध सुधार के परे हैं । विवाह नाममात्र का रह जाता है यद्यपि वह विधिक बंधन के अधीन रहता है । ऐसे मामले में विधि द्वारा ऐसे बंधन को तोड़ने से इनकार करने से विवाह का कोई प्रयोजन पूरा नहीं होता । इसके प्रतिकूल यह पक्षकारों की भावनाओं के प्रति अत्यंत ही अनादर दर्शित करता है । ऐसी समरूप स्थितियों में यह मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।"

11. इन सिद्धांतों की **सुमन कपूर** बनाम **सुधीर कपूर**[1] वाले मामले में पुनः पुष्टि की गई । उस मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने पत्नी द्वारा फाइल उस अपील पर विचार किया था जिसमें अपर जिला न्यायाधीश द्वारा उसके विरुद्ध विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की गई थी और उच्च न्यायालय द्वारा उसकी पुष्टि की गई थी । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यथाउल्लिखित संक्षिप्त तथ्य यह थे कि पक्षकारों के बीच विवाह वर्ष 1984

[1] (2009) 1 एस. सी. सी. 422.

में हुआ था । वे वर्ष 1966 में बाल्यावस्था से ही एक दूसरे को जानते थे । वे एक ही विद्यालय में पढ़ते थे और उनकी मित्रता अन्ततोगत्वा विवाह में परिवर्तित हो गई थी । यह एक अन्तर्जातीय विवाह था जिसमें प्रथमतः उनके माता-पिता द्वारा विरोध किया गया था किन्तु बाद में वे मान गए और विवाह की स्वीकृति दे दी । उनके विवाह से कोई बच्चा उत्पन्न नहीं हुआ ।

12. पत्नी का प्रतिभाशाली शैक्षणिक इतिहास रहा था और वह एक प्रतिष्ठित लालोर फाउंडेशन फैलोशिप, यूनाइटेड स्टेट आफ अमेरिका (यू. एस. ए.) की प्रापक भी रही थी और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्था (एम्स) के जीव-रसायन विभाग में नियोजित थी जहां से वह पी. एच. डी. कर रही थी । उसने यह अभिवाक् किया कि यद्यपि उसका जीवनयापन सही चल रहा था किन्तु, उसके पति की शिकायत के कारण उसने वह नौकरी छोड़ दी और स्वयं मुम्बई चली गई । वर्ष 1988 में दोनों पक्षकार यूनाइटेड स्टेट आफ अमेरिका गए जहां उसे लालोर फाउंडेशन फैलोशिप दिया जाना था जिसके लिए वह कनास सिटी में रुकी और अपने पति के साथ नहीं रुक सकी थी ।

13. पति ने यह दलील दी कि विवाह के पश्चात् पत्नी का उसके और उसके माता-पिता के साथ दृष्टिकोण, आचरण और व्यवहार प्रत्येक संभाव्य अवसरों पर उग्र, अपमानजनक हो गया था । उसने अपने गर्भपात आदि के बारे में भी उसे नहीं बताया और पितृत्व की सभी खुशियों और अनुभवों से उसे वंचित रखा । मेरे द्वारा तथ्यों को संक्षेप में ही उल्लिखित किया गया है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने क्रूरता के सिद्धांतों पर विचार करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "34. सिराज मोहम्मद खान जान मोहम्मद खान **बनाम** हैजुन्ननिशा यासीन खान और एक अन्य [(1981) 4 एस. सी. सी. 250] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह कथन किया था कि विधिक क्रूरता की अवधारणा सामाजिक अवधारणा और जीवन स्तर की अवधारणा के साथ परिवर्तित होती रहती है । यह भी कथन किया कि विधिक क्रूरता सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि शारीरिक हिंसा का प्रयोग होना चाहिए । वैवाहिक सहवास की अनिरन्तरता या पति के साथ वैवाहिक बाध्यताओं के बारे में पूर्णतया भिन्न मत रखना भी विधिक क्रूरता की कोटि में आता है ।
>
> 35. शोभा रानी **बनाम** मधुकर रेड्डी [(1988) 1 एस. सी. सी. 105]

वाले मामले में, इस न्यायालय ने क्रूरता की अवधारणा की परीक्षा की । यह मत व्यक्त किया कि शब्द 'क्रूरता' को हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन परिभाषित नहीं किया गया है । इसका प्रयोग मानवीय आचरण और संबंधों में व्यवहार अथवा वैवाहिक कर्तव्यों या बाध्यताओं के संबंध में अधिनियम की धारा 13(1)(ia) में किया गया है । यह पति-पत्नी में से एक के आचरण के दौरान दूसरे के आचरण को प्रभावित करता है । क्रूरता मानसिक या शारीरिक, सआशय या बिना आशय के हो सकता है । यदि यह शारीरिक है तो यह किस सीमा तक है वह सुसंगत होता है । यदि यह मानसिक है तो इस बात की जांच की जानी चाहिए कि क्रूरता के व्यवहार की प्रकृति क्या है और उसके बाद यह जांच की जानी चाहिए कि इसका दूसरे के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ा है । क्या यह युक्तियुक्त आशंका कारित करता है कि यह दूसरे के साथ रहने के लिए कष्टदायक या हानिकारक हो सकता है, अन्ततोगत्वा इसका निष्कर्ष शिकायत करने वाले पक्ष के आचरण की प्रकृति और उस पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखकर निकाला जाना चाहिए ।

36. तथापि, ऐसे अनेकों मामले हो सकते हैं जहां स्वयं शिकायत करने वाले का आचरण पर्याप्त रूप से दूषित और अविधिपूर्ण या अवैध हो । उसके बाद दूसरे पक्षकार पर इसके प्रभाव या हानि की जांच करने या विचार करने की आवश्यकता नहीं होती है । ऐसे मामलों में, क्रूरता सिद्ध हो जाएगी यदि स्वयं आचरण साबित कर दिया जाता है या स्वीकार कर लिया जाता है । आशय की अनुपस्थिति से उन मामलों में कोई भिन्नता नहीं होनी चाहिए यदि सामान्य विवेक रखने वाला व्यक्ति शिकायती कार्य को अन्यथा नहीं कर सकता जो क्रूरता की श्रेणी में आता है । आपराधिक मनःस्थिति क्रूरता के लिए आवश्यक तत्व नहीं है । पक्षकार को अनुतोष देने से इस आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता है कि यहां पर कोई जानबूझकर या इच्छापूर्ण दुर्व्यवहार नहीं किया गया है ।"

न्यायालय ने सिद्धांतों को अधिकथित करने के पश्चात् पत्नी की अपील खारिज कर दी ।

14. वर्तमान मामले में, पक्षकारों के साक्ष्य पर विचार करने के पूर्व, अभिवचनों को उल्लिखित किया जा सकता है । विचारण न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी, अर्जीदार ने यह अभिवाक् किया है कि विवाह कभी भी

पूर्णता को प्राप्त नहीं किया था, अपीलार्थी मात्र लगभग दो महीने ही उसके साथ रही जिसके पश्चात् उसने वैवाहिक गृह छोड़ दिया था । उसने कभी भी गृहस्थी कर्तव्यों का अनुपालन नहीं किया । कभी भी किसी संसूचना का उत्तर नहीं दिया अपितु इसके बजाय उसके साथ बात करना अत्यधिक कठिन हो गया था, प्रत्यर्थी पृथक्तः किराए के निवास में रहने लगा था, उसने कभी भी अपने साथ सहवास नहीं करने दिया और अपनी वैवाहिक बाध्यताओं को पूरा नहीं किया । तारीख 5 मई, 2003 को इस बहाने से अपने पिता के साथ वैवाहिक गृह छोड़ दिया कि वह गुवाहाटी में बी. एड की परीक्षा देने के लिए जा रही है किन्तु उसके पश्चात् वह वापस नहीं आयी । वह गृहस्थी कार्यों में रुचि नहीं लेती थी, उसने उसके कुटुम्ब को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी दी । इन कार्यों से संबंधित नोटिस भी उस पर तामील की गई थी ।

15. उत्तर में, लगाए गए विनिर्दिष्ट आरोपों से साधारणतः इनकार किया गया । अपीलार्थी ने यह कथन किया कि विवाह पूर्णता को उस समय प्राप्त कर लिया था जब वह तीन वर्षों तक प्रत्यर्थी के साथ निरन्तर रही थी । अन्य सभी निवेदनों से भी प्रत्यर्थी की कल्पनाओं पर आधारित होने के नाते इनकार किया गया । इन अभिवचनों को कुछ विस्तारपूर्वक उल्लिखित किया गया है क्योंकि वे पक्षकारों के साक्ष्य की विवेचना करते समय सुसंगत होंगे ।

16. प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के पते के साथ ही उसके पिता के पते पर भेजी गई तारीख 9 अक्तूबर, 2003 की नोटिस प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को अभिलेख पर साबित किया । इस मामले में साक्ष्य को विद्वान् न्यायालय द्वारा तारीख 8 जनवरी, 2007 को अभिलिखित किया गया जिसके पश्चात्, अपीलार्थी के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाहियां अपास्त कर दी गईं और मामले में आगे कार्यवाही अग्रेषित की गई ।

17. पक्षकारों के साक्ष्य को उल्लिखित करते समय मैं यह नोट करना चाहता हूं कि अपीलार्थी ने यह स्वीकार किया है कि उसने गुवाहाटी/असम में बी. एड पाठ्यक्रम में दाखिला लिया था किन्तु उसने अभिलेख पर इस बारे में कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया । उसके बाद उसने यह कथन किया कि उसने इस पाठ्यक्रम में वर्ष 2003 में दाखिला लिया था क्योंकि प्रत्यर्थी ने उसे नौकरी छोड़ने के लिए दबाव डाला था । वह परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गई और उसके बाद वह पुनः वापस चली गई और लगभग एक वर्ष तक गुवाहाटी में पढ़ाई करती रही । यह साबित नहीं किया गया है

कि किस कालेज/संस्था में उसने दाखिला लिया था, वह कब गुवाहाटी गई और अपनी पढ़ाई के दौरान कहां रुकी थी । वह इस अवधि के पश्चात् वापस आई थी किन्तु वह वैवाहिक गृह में नहीं रुकी थी ।

18. प्रत्यर्थी-साक्षी 3 अवतार सिंह, पूर्व ग्राम प्रधान, ग्राम पंचायत, बेला ने यह कथन किया कि प्रत्यर्थी उसके ग्राम का निवासी है । उसे अपीलार्थी के पिता ने यह सूचित किया था कि पक्षकारों के बीच वैवाहिक मामलों में कुछ विवाद है और इन परिस्थितियों में उसे हस्तक्षेप करना चाहिए और मामले का समाधान निकालना चाहिए । इन परिस्थितियों में, पूर्णरूपेण दोनों पक्षकारों के साक्ष्य पर विचार किया जाना चाहिए । जहां तक प्रथम आरोप का संबंध है यह है कि विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं किया है इस बारे में बेहतर साक्ष्य पक्षकार ही दे सकते हैं । किन्तु, इस बारे में उनका सुस्पष्ट कथन नहीं है । निस्संदेह, जब इस पहलू पर आरोपों और प्रत्यारोपों के द्वारा इनकार किया जाता है तो इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए विशेषज्ञ चिकित्सीय साक्ष्य का अवलंब लिया जा सकता है कि कौन सा पक्षकार सही बोल रहा है । मैंने, इस पहलू पर प्रकथन किया है और निर्णय में निष्कर्ष निकालने के पूर्व मुझे यह महसूस होता है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश ने सही ही यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को त्यक्त कर दिया था और यह कि उसने कभी भी अपने वैवाहिक गृह वापस लौटने की कोशिश नहीं की । यह तथ्य कि अपीलार्थी बी. एड पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए असम चली गई थी, जिसके बारे में उसने अभिलेख पर कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया है किन्तु इस तथ्य से जिसे पक्षकारों ने स्वीकार किया है, मैं यह निष्कर्ष निकाल सकता हूं कि यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं है कि उसने वास्तव में, इस बारे में प्रत्यर्थी को सूचित किया था और उसकी सहमति से ही असम गई थी । जैसा मेरे द्वारा उल्लिखित किया जा चुका है कि यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि संस्था/कालेज जहां वह पाठ्यक्रम की पढ़ाई कर रही थी अथवा जहां उसने पत्राचार अभ्यर्थी के रूप में नामांकन कराया था । विश्वविद्यालय/संस्था/कालेज की शुल्क संदाय रसीद, अनुक्रमांक का आबंटन, दाखिला का कोई सबूत या उसके द्वारा कक्षा में उपस्थित होने वाले कोई पत्राचार सबूत या विशिष्ट तारीख/तारीखों को परीक्षा में उपस्थित होने के बारे में कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया गया है । वह पूरे एक वर्ष गुवाहाटी में रुकी थी किन्तु कहां रुकी थी और किसके साथ रुकी थी, इस बारे में कोई सबूत नहीं है । इन परिस्थितियों में, यह निष्कर्ष निकाला जा

सकता है कि प्रत्यर्थी का साथ छोड़ने का तथ्य अर्थात् अभित्यजन का आशय बड़े पैमाने पर मौजूद था । इस कथन से यह सिद्ध होता है कि वह पूरे एक वर्ष अपने वैवाहिक गृह से दूर रही । इस बारे में अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं है कि इस अवधि के पश्चात् वह वास्तव में अपने वैवाहिक गृह में अपने पति के साथ वस्तुतः रहने लगी थी । अभिलेख पर के साक्ष्यों से मेरा यह भी निष्कर्ष है कि उसने अर्जीदार और उसके कुटुम्ब सदस्यों के विरुद्ध यह बहसी और लापरवाह आरोप लगाए हैं कि वे उसे पर्याप्त मात्रा में दहेज न लाने के लिए तंग और परेशान करते थे तथा प्रत्यर्थी के कुटुम्ब सदस्यों की प्रताड़ना पर ही वह वैवाहिक गृह छोड़ने के लिए बाध्य हुई थी । मेरा यह भी निष्कर्ष है कि अभि. सा. 3 चरण दास ने इन बातों के बारे में कोई स्पष्ट कथन नहीं किया है कि उसने एक कमरा किराए पर दिया था जिसमें अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों रहते थे ।

19. इन परिस्थितियों में, मेरे विवेक में इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है तथा अभिलेख पर के साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी ने कभी भी प्रत्यर्थी का साथ छोड़ने के लिए नहीं कहा था । प्रथम पहलू का उल्लेख करते हुए, मेरा यह निष्कर्ष है कि सम्पूर्ण परिस्थितियों में, अपीलार्थी के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है इन कारणों से कि घटनाओं का वर्णन और मामलों का कथन स्वाभाविक है ।

20. **रमन कुमार** बनाम **श्रीमती बक्शो थान्डी**[1] वाले मामले में माननीय न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "10. यह देखा जा सकता है कि अपीलार्थी और उसकी पत्नी के बीच संबंध सामान्य नहीं थे । वे काफी अल्प अवधि के लिए एक साथ रहे । आरोप यह है कि पत्नी ने पति को सामान्य यौन संबंध बनाने नहीं दिया । अपीलार्थी ईमानदार नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसने इस बारे में स्पष्ट प्रकथन नहीं किया है । यह प्रतीत होता है कि वह सुस्पष्टतः यह बताना चाहता था कि उसे उसकी पत्नी द्वारा सामान्य यौन संबंध बनाने से इनकार कर दिया गया था जबकि उसने यह प्रकथन किया कि उसे सहवास करने की अनुज्ञा नहीं दी थी । आरोप यह है कि पत्नी ने अपने साथ अपीलार्थी को सामान्य यौन संबंध बनाने नहीं दिया था । शायद इस पहलू पर स्पष्टतः निष्कर्ष निकाला जा सकता है यदि पत्नी अपने आधार के समर्थन में और

[1] ए. आई. आर. 2008 पंजाब-हरियाणा 95.

बयान दिया होता और उसकी प्रतिपरीक्षा हुई होती । अपीलार्थी ने शब्द सहवास का प्रयोग किया है बजाय यह स्पष्ट कथन करने के कि उसे विवाह की पूर्णता करने की मंजूरी नहीं दी थी । इस मामले के तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में इस पर और अधिक विस्तार करने या चर्चा करने की अपेक्षा नहीं है । पत्नी अपील का विरोध करने के लिए हितबद्ध नहीं है । पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने प्रत्यर्थी-पत्नी के मुख्तारनामा से मिले निर्देशों पर यह कथन किया कि यद्यपि प्रत्यर्थी-पत्नी इस संबंध को बनाए नहीं रख सकी और तद्नुसार, उत्तर फाइल करने के पश्चात् विचारण न्यायालय के समक्ष इस विवाह-विच्छेद याचिका का विरोध नहीं किया । इस प्रकार, इस अपील के लम्बित रखने और अपील में निष्कर्ष निकाले जाने तक इस विखंडित नातेदारी के साथ, पक्षकारों के एक साथ रहने के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । अपीलार्थी का यह अभिवाक् कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने उसे अपने साथ सहवास नहीं करने दिया, इसे इस अभिप्राय में नहीं लिया जा सकता है कि यौन संबंध बनाने से इनकार करने का अभिवाक् नहीं किया गया है । पत्नी के सम्पूर्ण व्यवहार जिसे अपीलार्थी के अखंडनीय साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया गया है, से उसके द्वारा पति के प्रति मानसिक क्रूरता दर्शित होती है । चूंकि, पत्नी ने अपील का विरोध नहीं किया है और न ही गंभीरता से विवाह-विच्छेद याचिका का विरोध किया है, इसलिए, अपीलार्थी के अभिवाक् को अभिलेख पर के साक्ष्यों और सामग्रियों से नकारात्मक नहीं कहा जा सकता है ।"

21. यह तथ्य कि अपीलार्थी ने यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है कि (क) कि उसका वैवाहिक गृह में अनुपस्थिति प्रत्यर्थी की सहमति द्वारा अत्यावश्यक थी इस कारण से कि वह उच्चतर अध्ययन हेतु गुवाहाटी जाना चाहती थी और यह कि (ख) यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है कि उसने किसी कालेज/संस्था में दाखिला लिया था जहां वह नियमित या पत्राचार छात्रा थी, साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि जहां वह गुवाहाटी में रुकी थी उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वैवाहिक गृह में उसकी अनुपस्थिति अन्यायोचित है ।

22. इस पहलू पर कि विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं किया, इन सभी के बारे में, मेरा यह कहना आवश्यक है कि लम्बे समय तक पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी को दाम्पत्य सुख का अवसर दिए बिना उससे अलग रहना स्वयमेव

ही परिस्थितियों को सिद्ध करता है । सुस्पष्टतः यदि वह गुवाहाटी में रह रही थी तो यह प्रश्न ही नहीं उठता कि दोनों एक साथ रह सकते थे या दोनों का एक दूसरे के प्रति पहुंच थी । मैं विद्वान् जिला न्यायाधीश के इन कारणों में कोई गलती नहीं पाता हूं जब उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि पक्षकारों के बीच वैवाहिक संबंध वस्तुतः समाप्त हो गए हैं । इस प्रकार, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है जिसे तद्नुसार, खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

(2014) 1 सि. नि. प. 399 **हिमाचल प्रदेश**

जगदीश ठाकुर और अन्य

बनाम

शिव दयाल उर्फ शिव दास और अन्य

तारीख 2 मई, 2012

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972] – वाद भूमि पर कब्जे सहित स्वामी होने का दावा करना – राजस्व अभिलेखों द्वारा पुष्टि होना – यदि कोई व्यक्ति दस्तावेजी साक्ष्यों के साथ ही मौखिक साक्ष्यों द्वारा यह साबित कर देता है कि वह वाद भूमि पर कब्जे सहित स्वामी है और उसकी सम्पुष्टि तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन भी होती है तो इसमें हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं होता और इस निमित्त पारित निर्णय और डिक्री वैध और कायम रखे जाने योग्य होगी ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थियों-वादियों और उनके हित-पूर्वाधिकारियों ने श्रीमती महन्ती के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के साथ घोषणा के लिए एक वाद संस्थित किया था । श्री महन्ती देवी की इस नियमित द्वितीय अपील के लम्बित रहने के दौरान मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर तारीख 24 मार्च, 2005 के आदेश द्वारा उसके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाया गया । वादियों के अनुसार, वादी और

प्रोफार्मा प्रतिवादी अर्थात् सुमित्रा देवी और चेत राम राजस्व संपदा, भजवानी, परगना जेहरवीन, तहसील गुमारवीन, जिला बिलासपुर में स्थित खेवट सं. 16, खतौनी सं. 11, खसरा सं. 151 में 10-9 बीघा भूमि के कब्जे सहित संयुक्त स्वामी थे । वादियों के अनुसार, प्रतिवादियों का वाद भूमि में कोई अधिकार, हक और हित नहीं था । वादियों के अनुसार, भूमि पर श्री दित्तू राम पुत्र श्री बरदू का स्वामित्व और कब्जा था । दित्तू राम ने वाद भूमि के अधिभोग अधिकारों को वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं 2 और 3 के हित-पूर्वाधिकारियों अर्थात् सुमित्रा देवी और चेत राम के पक्ष में 300/- रुपए के एवज में तारीख 26 बैसाखी सम्वत् 1986 ई. पू. के विक्रय-विलेख द्वारा विक्रय कर दिया था । उसका (वाद भूमि) कब्जा भी वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 के हित-पूर्वाधिकारियों को तारीख 26 बैसाख सम्वत् 1986 ई. पू. तत्समान् सन् 1929 को सौंप दिया गया था । वादी और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3, अपने हित-पूर्वाधिकारियों की मृत्यु के पश्चात् वाद भूमि के कब्जे में आए । उन्होंने हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के प्रवर्तन के पश्चात् वाद भूमि में साम्पत्तिक अधिकार अर्जित कर लिया । वादियों के अनुसार, प्रतिवादी महन्ती ने वर्ष 1959 में तृतीय पक्षकार के विरुद्ध 1959 की सिविल वाद सं. 60/1 संस्थित किया । उसे विद्वान् ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश, बिलासपुर द्वारा तारीख 13 मार्च, 1962 को डिक्री कर दिया गया । इसके पश्चात्, प्रतिवादी वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी के रूप में प्रविष्ट हुआ । वादियों के अनुसार, श्रीमती महन्ती (मृत) के पक्ष में पारित तारीख 13 मार्च, 1962 का निर्णय और डिक्री गलत, अवैध और शून्य था तथा उन पर और प्रोफार्मा प्रतिवादियों अर्थात् सुमित्रा देवी और चेत राम पर बाध्यकारी नहीं था । प्रतिवादियों ने जुलाई, 1962 से ही उनके कब्जे में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था । इन परिस्थितियों में, वादियों द्वारा वाद संस्थित किया गया । वाद का प्रतिवादी-महन्ती (मृत) द्वारा विरोध किया गया । प्रतिवादी ने वाद भूमि में वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 के स्वामित्व और कब्जे से इनकार किया । उसके अनुसार, वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 के हित-पूर्वाधिकारी ने उसके पिता दित्तू राम से वाद भूमि के सांपत्तिक अधिकारों को क्रय नहीं किया था । उसके अनुसार, दित्तू राम वाद भूमि का सम्पूर्ण स्वामी नहीं था, इसलिए, वह वाद भूमि या वाद भूमि के सांपत्तिक अधिकारों को वादियों तथा प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 के हित-पूर्वाधिकारी के पक्ष में विक्रय नहीं कर सकता था । उसके अनुसार, बिलासपुर राज्य के पहले के राजा में, राज्य की अधिकारिता के भीतर

स्थित सभी भूमि सम्पत्ति का सर्वोच्च स्वामित्व निहित था । राजा आलामालिक था और दित्तू राम मात्र अदना मालिक था । यह भी प्रकथन किया कि भूमि का राजा की पूर्व अनुमति के बिना विक्रय नहीं किया जा सकता था । उसने यह भी दलील दी कि पंजाब अभिधृति अधिनियम, 1887 बिलासपुर राज्य में लागू नहीं होती थी । उसने यह स्वीकार किया कि उसने तृतीय पक्षकार के विरुद्ध एक वाद संस्थित किया था । जिसे तारीख 13 मार्च, 1962 को विद्वान् ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश द्वारा डिक्री कर दिया गया था । उसने राजस्व अभिलेखों में तारीख 13 मार्च, 1962 के अनुसरण में उसके पक्ष में की गई प्रविष्टियों का समर्थन किया । विचारण न्यायालय ने विवाद्यक विरचित किया । विचारण न्यायालय ने तारीख 30 नवम्बर, 1995 को वाद खारिज कर दिया । वादियों ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, बिलासपुर के समक्ष एक अपील फाइल की । उन्होंने वाद डिक्री कर दिया । प्रोफार्मा प्रतिवादियों श्रीमती सुमित्रा और चेत राम के नाम भी अपील के पक्षकारों के ज्ञापन में जोड़ा गया । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया तथा वाद डिक्री कर दिया । वादी और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 1 और 2 को वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी घोषित कर दिया गया । प्रतिवादी महन्ती के विरुद्ध शाश्वत व्यादेश की डिक्री पारित करते हुए वाद भूमि पर वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों सं. 2 और 3 के स्वामित्व और कब्जे में हस्तक्षेप करने से स्थायी रूप से अवरुद्ध कर दिया । अतएव, नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संक्षेप में, वादियों का पक्षकथन यह है कि श्री दित्तू राम वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी थे । उन्होंने तारीख 26 बैसाख संवत् 1986 ई. पू. तत्समान सन् 1929 को वाद भूमि के सांपत्तिक अधिकारों को वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 अर्थात् सुमित्रा देवी और चेत राम के हित-पूर्वाधिकारियों के पक्ष में 300/- रुपए में विक्रय कर दिया था । उसे प्रदर्श पी. ए./1 द्वारा रजिस्ट्रीकृत कराया गया था । वादियों को वाद भूमि का कब्जा भी सौंप दिया गया था । दित्तू राम ने प्रदर्श पी. ए./1 द्वारा थोलू, गंभीर सिंह और दुर्गा के पक्ष में वाद भूमि का कब्जा विभाजित कर दिया था । प्रतिवादी महन्ती श्री दित्तू राम की पुत्री थी । उसने भी दित्तू राम के साम्पार्श्विकों के विरुद्ध तारीख 10 मार्च, 1959 को ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश, बिलासपुर के न्यायालय में 1959 की सिविल वाद सं. 60/1

संस्थित की थी । उसने 1959 की सिविल वाद सं. 61/1 में अपने पिता की संपदा के कब्जे का दावा किया । वाद का साम्पार्श्विकों द्वारा विरोध किया गया । ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश ने तारीख 13 मार्च, 1962 के निर्णय और डिक्री द्वारा यह मत व्यक्त किया कि वह अपने पिता की संपदा के कब्जे की हकदार है । वाद भूमि के संयुक्त कब्जे की डिक्री, तारीख 13 मार्च, 1962 के निर्णय और डिक्री द्वारा महन्ती देवी के पक्ष में पारित की गई । न तो वादियों को न ही प्रोफार्मा प्रतिवादियों को 1959 की सिविल वाद सं. 61/1 में पक्षकारों के रूप में जोड़ा गया था । वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 ने विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. ए./1 के आधार पर वाद भूमि पर कब्जे का दावा किया । वादियों ने सन् 1935-36 से प्रभावी जमाबंदी का अवलंब लिया यह सिद्ध करने के लिए कि उनके हित-पूर्वाधिकारी और वे स्वयमेव ही दित्तू राम को अपवर्जित करते हुए वाद भूमि के कब्जे में आ गए थे । महन्ती को 1959 की सिविल वाद सं. 60/1 में वादियों के साथ ही प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 को अभिवाचित करना अपेक्षित था । तारीख 28 सितम्बर, 1984 का नामांतरण सं. 324 को तारीख 13 मार्च, 1962 के निर्णय के आधार पर प्रतिवादी महन्ती के पक्ष में प्रमाणित किया गया है । प्रतिवादी ने अभिलेख पर ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है, यह सिद्ध करने के लिए कि किस प्रकार तारीख 28 सितम्बर, 1984 का नामांतरण उसके पक्ष में प्रमाणित किया गया था जबकि उसके पिता ने वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों के हित-उत्तराधिकारियों को प्रदर्श पी. ए./1 द्वारा वाद भूमि का पहले ही विक्रय कर दिया था । प्रतिवादी द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है कि वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों के हित-उत्तराधिकारी कभी भी वाद संपत्ति से बे-कब्जा किए गए थे । वाद हेतुक वादियों को वर्ष 1962 में उद्भूत हुआ जब प्रतिवादी ने वादियों के कब्जे में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया और तारीख 15 सितम्बर, 1992 को वाद संस्थित किया । वादियों ने वंशानुक्रम प्रदर्श पी. सी. भी यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया कि वे और प्रोफार्मा प्रतिवादी रघुनाथ के पुत्रों थोलू, गंभीर सिंह और दुर्गा के विधिक प्रतिनिधि हैं । अभि. सा. 1 शिव दयाल ने यह साक्ष्य दिया कि वादी और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 तथा उनके हित-पूर्वाधिकारी ने महन्ती देवी और उसके पिता को अपवर्जित करते हुए वाद भूमि के कब्जे में थे । श्री अमर नाथ, विलेख लेखक के अनुसार, विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. ए./1 रामजी दास, विलेख लेखक द्वारा लिखा गया था । रामजी दास की मृत्यु हो

गई है । अभि. सा. 2 अमर नाथ रामजी दास के साथ कार्य करने के कारण उसके हस्तलेख और हस्ताक्षरों से अवगत था । इस प्रक्रम पर रघुनाथ के पुत्रों थोलू, गंभीर सिंह और दुर्गा के पक्ष में प्रमाणित नामांकन सं. 91 का उल्लेख करना भी समुचित है जो प्रदर्श पी. ए./1 के आधार पर की गई थी । वे अधिभोग अभिधृतियों के रूप में वाद भूमि के कब्जे में आए थे । जब तारीख 21 फरवरी, 1971 को हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 प्रवर्तन में आया तो उन्होंने सांपत्तिक अधिकार अर्जित कर लिया । जब एक बार अधिभोग अधिकारों को वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों के हित उत्तराधिकारी के पक्ष में विक्रय कर दिया गया तो प्रतिवादी को वाद भूमि का स्वामी घोषित नहीं किया जा सकता है । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष अभिलिखित किया गया था कि वाद परिसीमा अवधि के भीतर है और हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् प्रदर्श पी. ए./1 के आधार पर वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों सं. 2 और 3 के पक्ष में सांपत्तिक अधिकारों की सही ही पुष्टि की गई है और तारीख 29 कार्तिक 1989 को वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों सं. 2 और 3 के पक्ष में प्रमाणित नामांकन सं. 91 और संगत रूप से पश्चात्वर्ती जमाबंदियों में की गई प्रविष्टियां, जो अखंडनीय रही, सही हैं । (पैरा 9 और 10)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2004 की नियमित द्वितीय अपील सं. 14.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री भूपेन्दर गुप्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ जनेश गुप्ता, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 1 से 3, 5 से 8, 11 से 20 तथा 4(क) से 4(घ) की ओर से	श्री रजनीश के. लाल, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय अपील, विद्वान् जिला न्यायाधीश, बिलासपुर द्वारा 1996 की सिविल अपील सं. 2 में पारित तारीख 14 अक्तूबर, 2003 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निदेशित है ।

2. इस नियमित द्वितीय अपील का अधिनिर्णय करने के लिए आवश्यक तात्विक तथ्य यह है कि प्रत्यर्थियों-वादियों और उनके हित-

पूर्वाधिकारियों ने श्रीमती महन्ती के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के साथ घोषणा के लिए एक वाद संस्थित किया था । श्री महन्ती देवी की इस नियमित द्वितीय अपील के लम्बित रहने के दौरान मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर तारीख 24 मार्च, 2005 के आदेश द्वारा उसके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाया गया । वादियों के अनुसार, वादी और प्रोफार्मा प्रतिवादी अर्थात् सुमित्रा देवी और चेत राम राजस्व संपदा, भजवानी, परगना जेहरवीन, तहसील गुमारवीन, जिला बिलासपुर में स्थित खेवट सं. 16, खतौनी सं. 11, खसरा सं. 151 में 10-9 बीघा भूमि के कब्जे सहित संयुक्त स्वामी थे । वादियों के अनुसार, प्रतिवादियों का वाद भूमि में कोई अधिकार, हक और हित नहीं था । वादियों के अनुसार, भूमि पर श्री दित्तू राम पुत्र श्री बरदू का स्वामित्व और कब्जा था । दित्तू राम ने वाद भूमि के अधिभोग अधिकारों को वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं 2 और 3 के हित-पूर्वाधिकारियों अर्थात् सुमित्रा देवी और चेत राम के पक्ष में 300/- रुपए के एवज में तारीख 26 बैसाख सम्वत् 1986 ई.पू. के विक्रय-विलेख द्वारा विक्रय कर दिया था । उसका (वाद भूमि) कब्जा भी वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 के हित-पूर्वाधिकारियों को तारीख 26 बैसाख सम्वत् 1986 ई.पू. तत्समान् सन् 1929 को सौंप दिया गया था । वादी और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3, अपने हित-पूर्वाधिकारियों की मृत्यु के पश्चात् वाद भूमि के कब्जे में आए । उन्होंने हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के प्रवर्तन के पश्चात् वाद भूमि में साम्पत्तिक अधिकार अर्जित कर लिया । वादियों के अनुसार, प्रतिवादी महन्ती ने वर्ष 1959 में तृतीय पक्षकार के विरुद्ध 1959 की सिविल वाद सं. 60/1 संस्थित किया । उसे विद्वान् ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश, बिलासपुर द्वारा तारीख 13 मार्च, 1962 को डिक्री कर दिया गया । इसके पश्चात्, प्रतिवादी वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी के रूप में प्रविष्ट हुआ । वादियों के अनुसार, श्रीमती महन्ती (मृत) के पक्ष में पारित तारीख 13 मार्च, 1962 का निर्णय और डिक्री गलत, अवैध और शून्य था तथा उन पर और प्रोफार्मा प्रतिवादियों अर्थात् सुमित्रा देवी और चेत राम पर बाध्यकारी नहीं था । प्रतिवादियों ने जुलाई, 1962 से ही उनके कब्जे में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था । इन परिस्थितियों में, वादियों द्वारा वाद संस्थित किया गया ।

3. वाद का प्रतिवादी-महन्ती (मृत) द्वारा विरोध किया गया । प्रतिवादी ने वाद भूमि में वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 के स्वामित्व

और कब्जे से इनकार किया । उसके अनुसार, वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 के हित-पूर्वाधिकारी ने उसके पिता दित्तू राम से वाद भूमि के सांपत्तिक अधिकारों को क्रय नहीं किया था । उसके अनुसार, दित्तू राम वाद भूमि का सम्पूर्ण स्वामी नहीं था, इसलिए, वह वाद भूमि या वाद भूमि के सांपत्तिक अधिकारों को वादियों तथा प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 के हित-पूर्वाधिकारी के पक्ष में विक्रय नहीं कर सकता था । उसके अनुसार, बिलासपुर राज्य के पहले के राजा में, राज्य की अधिकारिता के भीतर स्थित सभी भूमि सम्पत्ति का सर्वोच्च स्वामित्व निहित था । राजा आलामालिक था और दित्तू राम मात्र अदना मालिक था । यह भी प्रकथन किया कि भूमि का राजा की पूर्व अनुमति के बिना विक्रय नहीं किया जा सकता था । उसने यह भी दलील दी कि पंजाब अभिधृति अधिनियम, 1887 बिलासपुर राज्य में लागू नहीं होती थी । उसने यह स्वीकार किया कि उसने तृतीय पक्षकार के विरुद्ध एक वाद संस्थित किया था । जिसे तारीख 13 मार्च, 1962 को विद्वान् ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश द्वारा डिक्री कर दिया गया था । उसने राजस्व अभिलेखों में तारीख 13 मार्च, 1962 के अनुसरण में उसके पक्ष में की गई प्रविष्टियों का समर्थन किया ।

4. विचारण न्यायालय ने विवाद्यक विरचित किया । विचारण न्यायालय ने तारीख 30 नवम्बर, 1995 को वाद खारिज कर दिया । वादियों ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, बिलासपुर के समक्ष एक अपील फाइल की । उन्होंने वाद डिक्री कर दिया । प्रोफार्मा प्रतिवादियों श्रीमती सुमित्रा और चेत राम के नाम भी अपील के पक्षकारों के ज्ञापन में जोड़ा गया । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया तथा वाद डिक्री कर दिया । वादी और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 1 और 2 को वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी घोषित कर दिया गया । प्रतिवादी महन्ती के विरुद्ध शाश्वत व्यादेश की डिक्री पारित करते हुए वाद भूमि पर वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों सं. 2 और 3 के स्वामित्व और कब्जे में हस्तक्षेप करने से स्थायी रूप से अवरुद्ध कर दिया । अतएव, नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई । इसे निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्नों पर स्वीकार कर लिया गया :–

1. क्या वादी का वाद परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित है विशिष्टतया तारीख 13 मार्च, 1962 को विनिश्चित 1959 की सिविल वाद सं. 61/1 में निकाले गए निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए ?

2. क्या प्रथम अपील न्यायालय ने हिमाचल प्रदेश अभिधृति और

भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के उपबंधों को गलत तौर पर लागू किया और गलत निर्वचन किया यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वादी-प्रत्यर्थी जिन्होंने अधिभोग अधिकार क्रय कर लिया था, वे हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार नियम के प्रवर्तन द्वारा वाद संपत्ति के स्वामी हो गए थे ?

5. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री भूपिन्दर गुप्ता ने यह जोरदार तर्क दिया कि वादी द्वारा फाइल वाद परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित था । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि प्रथम अपील न्यायालय ने हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के उपबंधों का गलत निर्वचन किया है ।

6. श्री रजनीश के. लाल ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री का समर्थन किया ।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और ध्यानपूर्वक अभिलेखों का परिशीलन किया ।

8. चूंकि विधि के दोनों सारवान् प्रश्न एक दूसरे से संबंधित और जुड़े हुए हैं, इसलिए, साक्ष्यों की चर्चा की पुनरावृत्ति से बचने के लिए अवधारण के लिए उन्हें एक साथ विचार में लिया जाएगा ।

9. संक्षेप में, वादियों का पक्षकथन यह है कि श्री दित्तू राम वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी थे । उन्होंने तारीख 26 बैसाख संवत् 1986 ई. पू. तत्समान सन् 1929 को वाद भूमि के सांपत्तिक अधिकारों को वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 अर्थात् सुमित्रा देवी और चेत राम के हित-पूर्वाधिकारियों के पक्ष में 300/- रुपए में विक्रय कर दिया था । उसे प्रदर्श पी. ए./1 द्वारा रजिस्ट्रीकृत कराया गया था । वादियों को वाद भूमि का कब्जा भी सौंप दिया गया था । दित्तू राम ने प्रदर्श पी. ए./1 द्वारा थोलू, गंभीर सिंह और दुर्गा के पक्ष में वाद भूमि का कब्जा विभाजित कर दिया था । प्रतिवादी महन्ती श्री दित्तू राम की पुत्री थी । उसने भी दित्तू राम के साम्पार्श्विकों के विरुद्ध तारीख 10 मार्च, 1959 को ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश, बिलासपुर के न्यायालय में 1959 की सिविल वाद सं. 60/1 संस्थित की थी । उसने 1959 की सिविल वाद सं. 61/1 में अपने पिता की संपदा के कब्जे का दावा किया । वाद का साम्पार्श्विकों द्वारा विरोध किया गया । ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश ने तारीख 13 मार्च, 1962 के निर्णय और डिक्री द्वारा यह मत व्यक्त किया कि वह अपने पिता की संपदा के कब्जे की हकदार है । वाद भूमि के संयुक्त कब्जे की डिक्री, तारीख 13 मार्च, 1962 के

निर्णय और डिक्री द्वारा महन्ती देवी के पक्ष में पारित की गई । न तो वादियों को न ही प्रोफार्मा प्रतिवादियों को 1959 की सिविल वाद सं. 61/1 में पक्षकारों के रूप में जोड़ा गया था । वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 ने विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. ए./1 के आधार पर वाद भूमि पर कब्जे का दावा किया । वादियों ने सन् 1935-36 से प्रभावी जमाबंदी का अवलंब लिया यह सिद्ध करने के लिए कि उनके हित-पूर्वाधिकारी और वे स्वयमेव ही दित्तू राम को अपवर्जित करते हुए वाद भूमि के कब्जे में आ गए थे । महन्ती को 1959 की सिविल वाद सं. 60/1 में वादियों के साथ ही प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 को अभिवाचित करना अपेक्षित था । तारीख 28 सितम्बर, 1984 का नामांतरण सं. 324 को तारीख 13 मार्च, 1962 के निर्णय के आधार पर प्रतिवादी महन्ती के पक्ष में प्रमाणित किया गया है । प्रतिवादी ने अभिलेख पर ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है, यह सिद्ध करने के लिए कि किस प्रकार तारीख 28 सितम्बर, 1984 का नामांतरण उसके पक्ष में प्रमाणित किया गया था जबकि उसके पिता ने वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों के हित-उत्तराधिकारियों को प्रदर्श पी. ए./1 द्वारा वाद भूमि का पहले ही विक्रय कर दिया था । प्रतिवादी द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है कि वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों के हित-उत्तराधिकारी कभी भी वाद संपत्ति से बे-कब्जा किए गए थे । वाद हेतुक वादियों को वर्ष 1962 में उद्भूत हुआ जब प्रतिवादी ने वादियों के कब्जे में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया और तारीख 15 सितम्बर, 1992 को वाद संस्थित किया । वादियों ने वंशानुक्रम प्रदर्श पी. सी. भी यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया कि वे और प्रोफार्मा प्रतिवादी रघुनाथ के पुत्रों थोलू, गंभीर सिंह और दुर्गा के विधिक प्रतिनिधि हैं ।

10. अभि. सा. 1 शिव दयाल ने यह साक्ष्य दिया कि वादी और प्रोफार्मा प्रतिवादी सं. 2 और 3 तथा उनके हित-पूर्वाधिकारी ने महन्ती देवी और उसके पिता को अपवर्जित करते हुए वाद भूमि के कब्जे में थे । श्री अमर नाथ, विलेख लेखक के अनुसार, विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. ए./1 रामजी दास, विलेख लेखक द्वारा लिखा गया था । रामजी दास की मृत्यु हो गई है । अभि. सा. 2 अमर नाथ रामजी दास के साथ कार्य करने के कारण उसके हस्तलेख और हस्ताक्षरों से अवगत था । इस प्रक्रम पर रघुनाथ के पुत्रों थोलू, गंभीर सिंह और दुर्गा के पक्ष में प्रमाणित नामांकन सं. 91 का उल्लेख करना भी समुचित है जो प्रदर्श पी. ए./1 के आधार पर की गई थी । वे अधिभोग अभिधृतियों के रूप में वाद भूमि के कब्जे में आए

थे । जब तारीख 21 फरवरी, 1971 को हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 प्रवर्तन में आया तो उन्होंने सांपत्तिक अधिकार अर्जित कर लिया । जब एक बार अधिभोग अधिकारों को वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों के हित उत्तराधिकारी के पक्ष में विक्रय कर दिया गया तो प्रतिवादी को वाद भूमि का स्वामी घोषित नहीं किया जा सकता है । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष अभिलिखित किया गया था कि वाद परिसीमा अवधि के भीतर है और हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् प्रदर्श पी. ए./1 के आधार पर वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों सं. 2 और 3 के पक्ष में सांपत्तिक अधिकारों की सही ही पुष्टि की गई है और तारीख 29 कार्तिक 1989 को वादियों और प्रोफार्मा प्रतिवादियों सं. 2 और 3 के पक्ष में प्रमाणित नामांकन सं. 91 और संगत रूप से पश्चात्वर्ती जमाबंदियों में की गई प्रविटियां, जो अखंडनीय रही, सही हैं ।

11. तद्नुसार, इसमें उपर्युक्त रूप से व्यक्त की गई मताभिव्यक्तियों और विश्लेषणों को ध्यान में रखते हुए, इस नियमित द्वितीय अपील में कोई गुणागुण नहीं हैं और इसे खारिज किया जाता है । तथापि, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जा रहा है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

(2014) 1 सि. नि. प. 408 **हिमाचल प्रदेश**

शेर सिंह और अन्य

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 27 मई, 2013

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 और हिमाचल प्रदेश लोक परिसर और भूमि (बेदखली और किराया वसूली) अधिनियम, 1971 की धारा 4] – कतिपय

व्यक्तियों द्वारा वन भूमि पर मकान आदि का निर्माण करना – स्थानीय प्रशासन द्वारा उन्हें कतिपय सुविधाएं जैसे सड़कें, स्ट्रीट लाइटें आदि उपलब्ध कराना – उन मकानों पर लम्बे समय तक कब्जे के आधार पर प्रतिकूल कब्जे का दावा करते हुए हक का दावा करना – उनकी बेदखली के लिए सरकार द्वारा नोटिस जारी करना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि विवादित भूमि वन भूमि है तो किसी भी स्थिति में उस भूमि को आबंटित नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसका हक राज्य में निहित होता है और यदि कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह ऐसी भूमि पर कब्जा करके मकान आदि का निर्माण कर लेता है और स्थानीय प्रशासन भी उन्हें सड़कें, स्ट्रीट लाइटें आदि लगवाकर कतिपय सुविधाएं प्रदान करता है बावजूद इसके इन्हें प्राधिकृत नहीं कहा जा सकता है और ऐसी भूमि पर प्रतिकूल कब्जे का दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसी भूमि सरकार में निहित होती है ।

वर्तमान मामले में, अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों के विरुद्ध इस बात की घोषणा और व्यादेश के लिए एक वाद फाइल किया था कि वे समय बीतने के साथ सिहारदी चामरा में स्थित भूमि का कब्जे सहित स्वामी हो गए हैं । उन्होंने राज्य बनाम शेरु और अन्य वाले मामले में कलक्टर द्वारा तारीख 11 सितम्बर, 2000 को पारित आदेश के साथ ही शेरु बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य वाले मामले में फाइल अपील में आयुक्त (राजस्व) द्वारा पारित तारीख 19 मई, 2001 के आदेश को भी आक्षेपित किया है । उन्होंने वाद भूमि पर अपीलार्थियों के स्वामित्व और कब्जे में हस्तक्षेप करने से प्रत्यर्थियों को अवरुद्ध करते हुए स्थायी प्रतिषेध व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष की भी ईप्सा की है । अपीलार्थियों का अभिवाचित अभिकथन यह है कि वे ग्राम शिहारी के निवासी हैं जहां वे पिछले लगभग 60 वर्षों से अधिक समय से रह रहे हैं । अपीलार्थी बंजाला जाति से संबंधित हैं जो अनुसूचित जाति होने के नाते समाज के पिछड़े वर्ग में आते हैं । यह भी अभिकथित किया गया है कि अपीलार्थी अनुसूचित जनजाति होने के नाते पारम्परिक तौर पर जंगल क्षेत्र में रहते हैं । अपीलार्थी अतिप्राचीन समय से जंगलों में घूमते रहते थे, वहां निवास करते थे और वे अपनी जीविका निर्वाह के लिए जंगल और जंगल भूमि पर निर्भर करते थे । प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपीलार्थियों को वाद भूमि पर अप्राधिकृत कब्जा रखने के लिए नोटिस जारी किया । कलक्टर-सह-डी. एफ. ओ., सोलन ने कार्यवाही आरम्भ की, जिसका अपीलार्थियों द्वारा विरोध किया गया । उन्होंने वाद भूमि पर अपने प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् किया । अपीलार्थियों के स्वामित्व को हिमाचल प्रदेश राज्य द्वारा

भी मान्यता दी गई थी क्योंकि राज्य द्वारा अपीलार्थियों को मकान आदि निर्माण करने के लिए सहायता और अनुदान मंजूर किए गए थे । प्रत्यर्थियों ने किसी भी समय पर अपीलार्थियों के कब्जे के बारे में कोई आक्षेप उद्भूत नहीं किया था । वर्ष 1974 में, बलदेव सिंह, डी. एफ. ओ. ने घटनास्थल का दौरा किया और अपीलार्थियों को वाद भूमि से अपने निर्माण हटाने के लिए कहा । अपीलार्थियों ने यह प्राख्यान किया कि शासकों द्वारा उन्हें वाद भूमि का अधिभोग मंजूर किया गया था और उनका स्वामित्व दिया गया था । अपीलार्थियों ने अपने प्रतिकूल कब्जे का प्राख्यान किया और वाद भूमि पर प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक का दावा किया । प्रत्यर्थी सं. 2 को हिमाचल प्रदेश लोक परिसर और भूमि (बेदखली और किराया वसूली), अधिनियम, 1971 की धारा 4 के अधीन नोटिस जारी करने की कोई अधिकारिता नहीं है । अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों में, अपीलार्थियों ने हक का प्रश्न उद्भूत किया था जिसे कलक्टर द्वारा संक्षिप्त तरीके से विनिश्चित नहीं किया जा सका था । कलक्टर द्वारा पारित तारीख 11 सितम्बर, 2000 का आदेश गलत और अवैध है । इसी प्रकार, आयुक्त (राजस्व) द्वारा पारित तारीख 19 मई, 2001 का आदेश भी गलत और अवैध है । यह अभिकथित किया गया है कि ग्राम सभा, धरमपुर जिसके अधीन वाद भूमि की अधिकारिता आती है, ने सड़कों, स्ट्रीट लाइटों आदि की सुविधा उपलब्ध कराते हुए वाद भूमि के ऊपर वादियों/अपीलार्थियों के अधिकारों को मान्यता दे दी थी । वादियों के अधिकारों को, अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 के अधीन मान्यता दे दी गई है जो अपीलार्थियों को उनकी बेदखली से संरक्षण उपलब्ध कराता है । प्रत्यर्थियों ने लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया उन्होंने अधिकारिता, वाद कायम रखने, मूल्यांकन के बारे में आरम्भिक आक्षेप उद्भूत किए । गुणागुणों पर, इस बात से इनकार किया गया कि अपीलार्थी लगभग 60 वर्षों से अधिक समय से ग्राम सिहारदी चामरा के निवासी हैं । उन्होंने कलक्टर के साथ ही आयुक्त (राजस्व) द्वारा पारित आदेशों का बचाव किया । सरकार द्वारा अपीलार्थियों को उपलब्ध कराई गई सहायता उनके कल्याण के लिए थी न कि वन भूमि का अधिक्रमण करने के लिए थी । वाद भूमि कभी भी अपीलार्थी को आबंटित नहीं हुई थी । वे अधिक्रमणकर्ता हैं । इस बात से इनकार किया गया है कि अपीलार्थी प्रतिकूल कब्जे द्वारा वाद भूमि के स्वामी हो गए हैं । इस बात से इनकार किया गया है कि अपीलार्थी अपनी जीविका निर्वाह के लिए वन पर निर्भर हैं । अधिनियम, 2006 का संरक्षण अपीलार्थियों को उपलब्ध नहीं

है । अपीलार्थी वन भूमि पर कोई कृषि कार्य नहीं कर रहे हैं न ही वे अपनी जीविका निर्वाह के लिए बाजार में वन लकड़ी या अन्य वन उत्पाद का विक्रय कर रहे हैं । वे अपनी जीविका के लिए शिकार भी नहीं कर रहे हैं । अपीलार्थियों के शेष दावों से भी इनकार किया गया । अपीलार्थियों ने प्रत्युत्तर फाइल किया । अपीलार्थियों के वाद को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 29 दिसम्बर, 2010 को खारिज कर दिया गया था । अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत प्रथम अपील को भी तारीख 26 मार्च, 2012 को खारिज कर दिया, अतएव, द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा यह द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संक्षेप में, अपीलार्थियों का पक्षकथन यह है कि वर्ष 1942 के आस-पास महाराजा पटियाला ने अपीलार्थियों के पूर्वाधिकारियों को वाद भूमि दान में दी थी, उन्होंने इसके तत्काल पश्चात् अपने गृहों का निर्माण कर लिया था और तभी से वे वाद भूमि पर निर्मित गृहों में रह रहे हैं । वैकल्पिक रूप में अपीलार्थियों ने अपने प्रतिकूल कब्जे का पक्षकथन भी प्रस्तुत किया । उन्होंने अधिनियम, 2006 के अधीन संरक्षण की भी ईप्सा की है । वाद भूमि के ऊपर कुछ कच्चे और कुछ पक्के गृहों का निर्माण किया गया है किन्तु प्रत्यर्थियों का पक्षकथन यह है कि वाद भूमि के ऊपर अपीलार्थियों के अधिक्रमण का पता वर्ष 1990-92 के वन बंदोवस्त के दौरान चला, इसके पश्चात् अपीलार्थियों को वाद भूमि से बेदखल करने के लिए कदम उठाए गए । कलक्टर ने वाद भूमि के ऊपर अपीलार्थियों और अन्य अधिक्रमणकर्ताओं को पाया इसलिए उन्होंने तारीख 11 सितम्बर, 2000 के आदेश प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी के द्वारा बेदखली का आदेश दिया जिसे आयुक्त द्वारा भी तारीख 19 मई, 2001 के आदेश द्वारा कायम रखा गया । अपीलार्थी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि वाद भूमि को वर्ष 1942 के आस-पास महाराजा पटियाला द्वारा उन्हें आबंटित किया गया था । अपीलार्थियों ने यह दर्शित करने के लिए राजस्व अभिलेख में महाराजा पटियाला का कोई लिखित या मौखिक आदेश प्रस्तुत नहीं कर सके कि वस्तुतः वाद भूमि को वर्ष 1942 में महाराजा पटियाला द्वारा अपीलार्थियों को आबंटित किया गया था । अपीलार्थियों ने यह अभिकथित किया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 भी पूर्व में अपीलार्थियों के स्वामित्व की जानकारी रखते हुए भी अपीलार्थियों को सामान्य सुविधाएं उपलब्ध करवाई थीं । अभिलेख पर यह साबित किया गया है कि वाद भूमि वन भूमि का भाग है । अपीलार्थियों के साक्ष्यों में यह कथन किया गया है कि वन भूमि आबंटित नहीं की जा सकती थी ।

किन्तु, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों के प्राधिकृत कालोनी के वोटरों को रिझाने के लिए पंचायत के प्राधिकारियों को उन्हें कुछ सामान्य सुविधाएं उपलब्ध कराई थीं किन्तु इससे अपीलार्थियों और अन्यों द्वारा वन भूमि पर निर्मित अप्राधिकृत कालोनी वैध नहीं हो जाती है । वाद भूमि पर अपीलार्थियों का साधारण कब्जा होने से ही उन्हें उस पर वैध हक प्रदत्त नहीं हो जाता है । अपीलार्थियों ने वाद भूमि के ऊपर दान के माध्यम से स्वामित्व और साथ ही प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद सम्पत्ति पर हक का विरोधाभाषी अभिवाक् लिया । तथापि, लम्बे समय तक कब्जे को तब तक प्रतिकूल कब्जे के रूप में अभिलिखित नहीं किया जा सकता है जब तक कि यह इस पक्षद्रोही आशय और निरन्तर कब्जे के रूप में इस प्रकार दर्शित नहीं हो जाता है कि इसके आधार पर कानूनी रूप में प्रतिकूल कब्जे का दावा किया जा सके । राज्य को भी वर्ष 1990-92 में वन बंदोवस्त होने तक इस बात की जानकारी नहीं थी कि अपीलार्थियों का वाद भूमि के ऊपर अप्राधिकृत कब्जा है । राज्य को वर्ष 1990-92 में ही वन बंदोवस्त के दौरान वहां भूमि के ऊपर अपीलार्थियों के अप्राधिकृत कब्जे के बारे में जानकारी हुई । अभि. सा. 7 बलदेव सिंह ने यह कथन किया कि उसे वर्ष 1975 में डी. एफ. ओ., वन के रूप में वाद भूमि के ऊपर अपीलार्थियों के अप्राधिकृत कब्जे के बारे में जानकारी हुई थी और उसने उस पर विश्वास नहीं किया । अभि. सा. 7 द्वारा इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि जब उसे वाद भूमि के ऊपर अपीलार्थियों के अप्राधिकृत कब्जे की जानकारी हुई तो उसने वाद भूमि से अपीलार्थियों के बेदखली के लिए कोई कार्यवाही क्यों नहीं की अथवा इस बात की जानकारी उच्चतर प्राधिकारियों के अभिज्ञान में नहीं लाई कि वाद भूमि के ऊपर अपीलार्थियों का अप्राधिकृत कब्जा है । इस प्रकार, किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाए तो भी अपीलार्थी वाद भूमि के ऊपर अपने प्रतिकूल कब्जे को साबित करने में असफल रहे हैं । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि दोनों निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित की है कि सिविल न्यायालय को अधिनियम के अधीन कलक्टर द्वारा तारीख 11 सितम्बर, 2000 को और आयुक्त द्वारा तारीख 19 मई, 2001 के आदेश में अभिलिखित निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थियों के हक के प्रश्न पर विचार करने की कोई अधिकारिता नहीं थी । चमारु राम वाले मामले में व्यक्त मतों को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल के इस निवेदन में सार है । चमारु राम वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिनियम की धारा 15 के अधीन अधिरोपित वर्जन से वादियों को

सिविल वाद फाइल करके अपने हक का दावा करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है । तथापि, अपीलार्थी, वाद भूमि पर अपने हक का दावा करने में स्वतंत्र रूप से असफल रहे हैं । अपीलार्थियों की ओर से यह भी निवेदन किया गया है कि कलक्टर और आयुक्त ने सामूहिक रूप से अपीलार्थियों के विरुद्ध कार्यवाही करके त्रुटि कारित की है, यह निवेदन किया है कि व्यक्तिगत तौर पर अपीलार्थी विवादित भूमि के कतिपय भाग के कब्जे में हैं, इसलिए सभी अपीलार्थियों के विरुद्ध एक साथ कलक्टर और आयुक्त द्वारा कार्यवाही नहीं की जा सकती थी । इस निवेदन के समर्थन में रविन्द्र सिंह वाले मामले की सहायता ली गई है । अपीलार्थियों ने एक साथ संयुक्त रूप से उनके विरुद्ध की गई कार्यवाही में कोई प्रतिकूलता दर्शित नहीं की है । इसलिए, अपीलार्थी रविन्द्र सिंह वाले मामले का लाभ नहीं ले सकते हैं । अंततः, यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी अधिनियम, 2006 के अधीन संरक्षित हैं । अपीलार्थियों ने वाद पत्र में विभिन्न आधार लिए हैं । उन्होंने यह अभिवाक् किया है कि वे अनुसूचित जाति से संबंधित हैं । उन्होंने यह भी अभिवाक् किया है कि वे अनुसूचित जनजाति के हैं । उनका यह भी पक्षकथन है कि वे बंगला समुदाय से संबंधित हैं । अधिनियम, 2006 की धारा 2 के उपखंड में परिभाषित वन निवासी 'अनुसूचित जनजाति' का अभिप्राय अनुसूचित जनजातियों के उन सदस्यों या समुदाय से है जो प्राथमिक तौर पर वन निवासी हैं और जो अपनी सद्भाविक आवश्यकताओं के लिए वन या वन भूमि पर निर्भर करते हैं और उनमें अनुसूचित जनजाति चरवाहा समुदाय भी सम्मिलित थे । धारा 2 का खंड (थ) में परिभाषित 'अन्य पारम्परिक वन निवासी' से अभिप्राय ऐसे किसी सदस्य या समुदाय से है जो प्राथमिक तौर पर तारीख 13 दिसम्बर, 2005 के पूर्व कम-कम से तीन पीढ़ियों से वन निवासी रहे हैं और जो अपनी सद्भाविक आवश्यकताओं के लिए वन या वन भूमि पर निर्भर थे । खंड (थ) का स्पष्टीकरण में उपबंधित पीढ़ी से अभिप्राय 25 वर्षों की समाविष्ट अवधि से है । अधिनियम, 2006 की धारा 3 वन निवासी अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारम्परिक वन निवासियों के वन अधिकारों को सुनिश्चित करती है । अपीलार्थी ने वाद पत्र में यह अभिवाक् किया कि बंगला जाति से संबंधित हैं और अनुसूचित जाति के हैं । उन्होंने यह भी अभिवाक् किया कि वे अनुसूचित जनजाति के हैं और वन क्षेत्र में पारम्परिक तौर पर निवास करते हैं । वे इस बारे में निश्चित नहीं हैं कि वे किस समुदाय या जाति से संबंधित हैं । अपीलार्थियों ने यह साबित नहीं किया कि उनके समुदाय प्राथमिक तौर पर वनों में निवास करते हैं और

अपनी सद्भाविक आवश्यकताओं के लिए वनों या वन भूमि पर निर्भर करते हैं । इसके प्रतिकूल, साक्ष्य में यह आया है कि अपीलार्थियों में से कुछ विभिन्न स्थानों पर नियोजित हैं । वाद, वर्ष 2002 में फाइल किया गया था । अपीलार्थियों ने यह अभिवाक् किया है कि वे ग्राम सिहादी में लगभग 60 वर्षों से अधिक समय से रह रहे हैं । इसलिए, अपीलार्थियों के अनुसार, वर्ष 1942 से या उसके आस-पास से वाद भूमि पर उनका अधिभोग है । अधिनियम, 2006, तारीख 13 दिसम्बर, 2005 के पूर्व से 25 वर्ष के प्रत्येक पीढ़ी के पिछले तीन पीढ़ियों से ऐसी भूमि पर अधिभोग रखने वाले को अन्य पारम्परिक वन निवासियों के रूप में मान्यता देता है । दूसरे शब्दों में, अधिनियम, 2006 उन पारम्परिक वन निवासियों को मान्यता देता है जिनका तारीख 13 दिसम्बर, 1930 तक वन भूमि पर अधिभोग रहा है । इस प्रकार, अपीलार्थी अधिनियम के अधीन अन्य पारम्परिक वन निवासी भी नहीं हैं जैसा कि उन्होंने अभिवाक् किया है । अपीलार्थी उस वाद भूमि के ऊपर जो वन भूमि का भाग है, मात्र अपने साधारण कब्जे के आधार पर अधिनियम, 2006 के अधीन संरक्षण का दावा नहीं कर सकते हैं । यह साधारण जानकारी की बात है कि व्यक्ति, व्यक्तिगत तौर पर या सामूहिक रूप से सरकारी भूमि पर अधिक्रमण नहीं कर सकता है, वे रस्सी खींचकर उस भूमि पर अधिक्रमण किए हुए हैं और प्राधिकारियों की आशय या अनाशय के साथ अधिक्रमणित भूमि पर बेदखली से बचे हुए हैं किन्तु, इसका अभिप्राय यह नहीं है कि ऐसे अधिक्रमणकर्ता समय बीतने के साथ सरकारी भूमि पर अपना हक अर्जित कर लेते हैं । अपीलार्थी, वाद भूमि के ऊपर अपने हक को साबित करने में बुरी तरह से असफल रहे हैं । (पैरा 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28 और 29)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2004] 2004 (3) क्रिमिनल ला जर्नल (हि. प्र.) 560 : **रविन्द्र सिंह और अन्य** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** ; 10,26

[2002] 2002 (1) क्रिमिनल ला जर्नल (हि. प्र.) 440 : **चमारु राम** बनाम **अपर आयुक्त (अपील) और अन्य** । 10,26

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012-क की नियमित द्वितीय अपील सं. **512.**

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 की अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री दिनेश कुमार, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एम. एल. चौहान, अपर महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह – अपीलार्थी, वादी हैं वे दोनों निचले न्यायालयों में हार गए थे, उन्होंने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, सोलन द्वारा 2011 की सिविल अपील सं. 12-एस./13 में पारित तारीख 26 मार्च, 2012 के निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया है जिन्होंने विद्वान् सिविल न्यायाधीश, (ज्येष्ठ खंड) कसौली, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश द्वारा 2002 की सिविल वाद सं. 284/1 में पारित तारीख 29 दिसम्बर, 2010 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी थी ।

2. अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों के विरुद्ध इस बात की घोषणा और व्यादेश के लिए एक वाद फाइल किया था कि वे समय बीतने के साथ सिहारदी चामरा में स्थित भूमि का कब्जे सहित स्वामी हो गए हैं । उन्होंने राज्य बनाम शेरु और अन्य वाले मामले में कलक्टर द्वारा तारीख 11 सितम्बर, 2000 को पारित आदेश के साथ ही शेरु बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य वाले मामले में फाइल अपील में आयुक्त (राजस्व) द्वारा पारित तारीख 19 मई, 2001 के आदेश को भी आक्षेपित किया है । उन्होंने वाद भूमि पर अपीलार्थियों के स्वामित्व और कब्जे में हस्तक्षेप करने से प्रत्यर्थियों को अवरुद्ध करते हुए स्थायी प्रतिषेध व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष की भी ईप्सा की है ।

3. अपीलार्थियों का अभिवाचित अभिकथन यह है कि वे ग्राम शिहारी के निवासी हैं जहां वे पिछले लगभग 60 वर्षों से अधिक समय से रह रहे हैं । अपीलार्थी बंजाला जाति से संबंधित हैं जो अनुसूचित जाति के होने के नाते समाज के पिछड़े वर्ग में आते हैं । यह भी अभिकथित किया गया है कि अपीलार्थी अनुसूचित जनजाति के होने के नाते पारम्परिक तौर पर जंगल क्षेत्र में रहते हैं । अपीलार्थी अतिप्राचीन समय से जंगलों में घूमते रहते थे, वहां निवास करते थे और वे अपनी जीविका निर्वाह के लिए जंगल और जंगल भूमि पर निर्भर करते थे ।

4. प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपीलार्थियों को वाद भूमि पर अप्राधिकृत कब्जा रखने के लिए नोटिस जारी किया । कलक्टर-सह-डी. एफ. ओ., सोलन ने

कार्यवाही आरम्भ की, जिसका अपीलार्थियों द्वारा विरोध किया गया । उन्होंने वाद भूमि पर अपने प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् किया । अपीलार्थियों के स्वामित्व को हिमाचल प्रदेश राज्य द्वारा भी मान्यता दी गई थी क्योंकि राज्य द्वारा अपीलार्थियों को मकान आदि निर्माण करने के लिए सहायता और अनुदान मंजूर किए गए थे । प्रत्यर्थियों ने किसी भी समय पर अपीलार्थियों के कब्जे के बारे में कोई आक्षेप उद्भूत नहीं किया था ।

5. वर्ष 1974 में, बलदेव सिंह, डी. एफ. ओ. ने घटनास्थल का दौरा किया और अपीलार्थियों को वाद भूमि से अपने निर्माण हटाने के लिए कहा । अपीलार्थियों ने यह प्राख्यान किया कि शासकों द्वारा उन्हें वाद भूमि का अधिभोग मंजूर किया गया था और उनका स्वामित्व दिया गया था । अपीलार्थियों ने अपने प्रतिकूल कब्जे का प्राख्यान किया और वाद भूमि पर प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक का दावा किया ।

6. प्रत्यर्थी सं. 2 को हिमाचल प्रदेश लोक परिसर और भूमि (बेदखली और किराया वसूली) अधिनियम, 1971 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 4 के अधीन नोटिस जारी करने की कोई अधिकारिता नहीं है । अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों में, अपीलार्थियों ने हक का प्रश्न उद्भूत किया था जिसे कलक्टर द्वारा संक्षिप्त तरीके से विनिश्चित नहीं किया जा सका था । कलक्टर द्वारा पारित तारीख 11 सितम्बर, 2000 का आदेश गलत और अवैध है । इसी प्रकार, आयुक्त (राजस्व) द्वारा पारित तारीख 19 मई, 2001 का आदेश भी गलत और अवैध है ।

7. यह अभिकथित किया गया है कि ग्राम सभा, धरमपुर जिसके अधीन वाद भूमि की अधिकारिता आती है, ने सड़कों, स्ट्रीट लाइटों आदि की सुविधा उपलब्ध कराते हुए वाद भूमि के ऊपर वादियों/अपीलार्थियों के अधिकारों को मान्यता दे दी थी । वादियों के अधिकारों को, अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "2006 का अधिनियम" कहा गया है) के अधीन मान्यता दे दी गई है जो अपीलार्थियों को उनकी बेदखली से संरक्षण उपलब्ध कराता है ।

8. प्रत्यर्थियों ने लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया उन्होंने अधिकारिता, वाद कायम रखने, मूल्यांकन के बारे में आरम्भिक आक्षेप उद्भूत किए । गुणागुणों पर, इस बात से इनकार किया गया कि

अपीलार्थी लगभग 60 वर्षों से अधिक समय से ग्राम सिहारदी चामरा के निवासी हैं । उन्होंने कलक्टर के साथ ही आयुक्त (राजस्व) द्वारा पारित आदेशों का बचाव किया । सरकार द्वारा अपीलार्थियों को उपलब्ध कराई गई सहायता उनके कल्याण के लिए थी न कि वन भूमि का अधिक्रमण करने के लिए थी । वाद भूमि कभी भी अपीलार्थी को आबंटित नहीं हुई थी । वे अधिक्रमणकर्ता हैं । इस बात से इनकार किया गया है कि अपीलार्थी प्रतिकूल कब्जे द्वारा वाद भूमि के स्वामी हो गए हैं । इस बात से इनकार किया गया है कि अपीलार्थी अपनी जीविका निर्वाह के लिए वन पर निर्भर हैं । अधिनियम, 2006 का संरक्षण अपीलार्थियों को उपलब्ध नहीं है । अपीलार्थी वन भूमि पर कोई कृषि कार्य नहीं कर रहे हैं न ही वे अपनी जीविका निर्वाह के लिए बाजार में वन लकड़ी या अन्य वन उत्पाद का विक्रय कर रहे हैं । वे अपनी जीविका के लिए शिकार भी नहीं कर रहे हैं । अपीलार्थियों के शेष दावों से भी इनकार किया गया ।

9. अपीलार्थियों ने प्रत्युत्तर फाइल किया । पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे :–

1. क्या प्रतिवादी सं. 2 द्वारा हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम शेरु और अन्य वाले मामले में तारीख 11 सितम्बर, 2000 को पारित आदेश तथा आयुक्त (राजस्व) द्वारा अपील सं. 71/2000 शीर्षक शेरु बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य वाले मामले में तारीख 19 मई, 2001 को पारित आदेश गलत, अवैध, अकृत और शून्य है, जैसा कि अभिकथित है ?

2. क्या वादी प्रतिकूल कब्जे द्वारा वाद भूमि के बारे में अपना हक सुनिश्चित कर लिए हैं, जैसा कि अभिकथित है ?

2(क). क्या वादी, अनुसूचित जनजाति और अन्य पारम्परिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए अपनी बेदखली से संरक्षित हैं, जैसा कि अभिकथित है ?

3. क्या इस न्यायालय की अधिकारिता, हिमाचल प्रदेश लोक परिसर और भूमि (बेदखली और किराया वसूली) अधिनियम, 1971 के अधीन इस मामले का विचारण करने और विनिश्चय करने से वर्जित है, जैसा कि अभिकथित है ?

4. क्या विधि की दृष्टि में वाद वर्तमान प्ररूप में कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

5. क्या वादपत्र से कोई वाद हेतुक प्रकट नहीं होता है, जैसा कि अभिकथित है ?

6. क्या वाद का न्यायालय शुल्क और अधिकारिता के प्रयोजन के लिए समुचित तौर पर मूल्यांकन नहीं किया गया है ?

7. अनुतोष ।

विवाद्यक सं. 1, 2, 2(क), 4 और 6 के नकारात्मक उत्तर दिए गए और विवाद्यक सं. 3 का सकारात्मक उत्तर दिया गया तथा विवाद्यक सं. 5 पर जोर नहीं दिया गया । अपीलार्थियों के वाद को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 29 दिसम्बर, 2010 को खारिज कर दिया गया था । अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत प्रथम अपील को भी तारीख 26 मार्च, 2012 को खारिज कर दिया, अतएव, द्वितीय अपील फाइल की गई ।

10. मैंने, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री दिनेश कुमार और प्रत्यर्थियों के विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री एम. एल. चौहान को सुना और अभिलेखों का भी परिशीलन किया । अपीलार्थियों की ओर से, यह निवेदन किया गया कि विद्वान् निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित की है कि सिविल न्यायालय की वाद विचारण करने की अधिकारिता वर्जित है । निचले न्यायालयों ने गलत तौर पर अपीलार्थियों के विरुद्ध उनके प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को अभिनिर्धारित किया है । अपीलार्थी अन्यथा भी अधिनियम, 2006 के अधीन संरक्षित हैं । साक्ष्यों का गलत निर्वचन किया गया है । **चमारु राम** बनाम **अपर आयुक्त (अपील) और अन्य**[1] तथा **रविन्द्र सिंह और अन्य** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिया गया । विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री का समर्थन किया और यह निवेदन किया कि दोनों निचले न्यायालयों ने साक्ष्यों का समुचित मूल्यांकन करने के पश्चात् सुस्पष्टतः अपीलार्थियों के विरुद्ध तथ्यों का निष्कर्ष अभिलिखित किया है । अपील में कोई भी सारवान् विधि का प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है । द्वितीय अपील में साक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन करना अनुज्ञेय नहीं है ।

11. वाद को आरम्भतः तारीख 11 जून, 2009 को खारिज कर दिया गया था । अपील में विद्वान् जिला न्यायाधीश ने अपीलार्थियों को संशोधित

---

[1] 2002 (1) क्रिमिनल ला जर्नल (हि. प्र.) 440.

[2] 2004 (3) क्रिमिनल ला जर्नल (हि. प्र.) 560.

आवेदन फाइल करने की इजाजत दे दी थी । तारीख 20 जुलाई, 2010 को अपील स्वीकार कर ली गई थी और वाद को इस निर्देश के साथ विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया गया था कि वह संशोधित वादपत्र में लिखित कथन फाइल करने के लिए अपीलार्थियों को अवसर प्रदान करे । पक्षकारों को नए विवाद्यकों, यदि कोई हो, पर साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया । इसके पश्चात्, विचारण न्यायालय ने तारीख 29 दिसम्बर, 2010 को वाद खारिज कर दिया था और विद्वान् अपर जिला जिला न्यायाधीश ने तारीख 29 दिसम्बर, 2010 को विद्वान् विचारण न्यायालय के तारीख 26 मार्च, 2010 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी थी ।

12. अपीलार्थियों ने तारीख 11 सितम्बर, 2000 और तारीख 19 मई, 2001 के आदेशों को आक्षेपित किया । उन्होंने यह घोषणा करने की ईप्सा की कि वे तारीख 11 सितम्बर, 2000 के आदेश में उल्लिखित भूमि और निर्माण के स्वामी हैं उन्होंने 30 वर्षों से अधिक समय से प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अपने हक अर्जित किए हैं । वैकल्पिक तौर पर, वे अधिनियम, 2006 के अधीन उन्हें भूमि धारण करने और कब्जा रखने का अधिकार है । उन्होंने वाद भूमि में हस्तक्षेप करने से अवरुद्ध करने के लिए प्रत्यर्थियों के विरुद्ध व्यादेश की भी प्रार्थना की । अपीलार्थियों ने यह अभिवाक् किया कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपीलार्थियों को सिहादी में स्थित वन भूमि पर खसरा सं. 1 में 2 से 6 बिस्वा भूमि के विभिन्न भागों पर अपीलार्थियों के कब्जे को चिन्हित करते हुए नोटिस जारी किया है ।

13. अपीलार्थियों ने यह अभिवाक् किया कि वे ग्राम सिहादी चामरा में पिछले लगभग 60-70 वर्षों से अधिक समय से रह रहे हैं और वे अनुसूचित जाति के हैं । वे सद्भाविक जीविका निर्वाह के लिए वन भूमि पर निर्भर हैं । वे अनुसूचित जनजातियों और वन क्षेत्र के पारम्परिक निवासी हैं । प्रत्यर्थी सं. 2 को अधिनियम के अधीन अपीलार्थियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की अधिकारिता नहीं है, जो अन्यथा भी अधिनियम, 2006 के अधीन संरक्षित हैं ।

14. अपीलार्थियों ने वाद भूमि पर अपने कब्जे को उपदर्शित करते हुए कोई भी राजस्व अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया है । उन्होंने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/बी से प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/एफ आदेशों के संबंध में आवेदन और विद्युत कनेक्शन प्रस्तुत किया है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/एफ तारीख 17 जुलाई, 1964 का आवेदन है और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/ई भोदू राम के पक्ष में कनेक्शन आदेश है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/डी तारीख 27 अगस्त, 1978 का

आवेदन है और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/सी सुखराम के पक्ष में तारीख 27 सितम्बर, 1978 का कनेक्शन आदेश है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/बी साधराम द्वारा तारीख 16 जून, 1992 को प्रस्तुत आवेदन है ।

15. अभि. सा. 1 साधराम अपने साक्ष्य में, शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए, तारीख 11 सितम्बर, 2000 के आदेश प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी की प्रति और अपील के आधारों प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी की प्रति और आयुक्त के आदेश चिन्ह ए की प्रति प्रस्तुत की । शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए में उसने यह कथन किया कि वर्ष 1942 में या उसके आसपास सिहादी चामरा क्षेत्र पटियाला राज्य में था । पटियाला के महाराजा उनके समुदाय द्वारा की गई सेवाओं से प्रसन्न थे और इसलिए उनके पूर्वजों को वाद भूमि दान में दी थी और तभी से वे वाद भूमि में रह रहे हैं । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि उसके पूर्वजों ने एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना छोड़ दिया, वाद भूमि का विकास किया और वहां पर स्थायी निर्माण करके रहने लगे । गृहों का निर्माण वर्ष 1944-45 में किया गया था उसके पूर्वज दान के आधार पर वाद भूमि के स्वामी हो गए थे । हिमाचल प्रदेश राज्य ने भी उन्हें स्वामी के रूप में माना और उनके गृहों को सुधार करने के लिए वित्तीय सहायता भी मंजूर की । प्रतिवादियों को दान के जटिल प्रश्न पर अधिनिर्णय करने की कोई अधिकारिता नहीं है । उसने यह कथन किया कि वैकल्पिक तौर पर, वादी प्रतिकूल कब्जे के आधार पर वाद भूमि के स्वामी हो गए हैं । बलदेव सिंह (डी. एफ. ओ.) ने वर्ष 1975 में घटनास्थल का दौरा किया था । उसे यह बताया गया था कि वाद भूमि, वर्ष 1942 में पटियाला के महाराजा द्वारा वादियों को आबंटित की गई थी । बलदेव सिंह ने वादियों को यह बताया कि वे अवैध कब्जे में हैं । उन्होंने वाद भूमि पर अपने स्वामित्व का प्राख्यान किया । वादी अनुसूचित जाति से संबंधित हैं । प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन किया कि उसके गृह का निर्माण लगभग 30-35 वर्ष पूर्व हुआ था, उसके कथन को तारीख 18 मार्च, 2006 को अभिलिखित किया गया था । उनके कब्जे को कभी भी पटवारी ने अभिलिखित नहीं किया । उनके पास दान के माध्यम से भूमि आबंटित करने के बारे में कोई सबूत नहीं है । उसने इस बात से इनकार किया कि उनके द्वारा गृहों का निर्माण नवीनतम है ।

16. अभि. सा. 2 राजेश कुमार ने अपने साक्ष्य में अपना शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए प्रस्तुत किया जिसमें कम या अधिक प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के शपथपत्र में कही गई बातें ही थीं । प्रतिपरीक्षा में, उसने यह कथन

किया कि वह बहुत दिनों से कार्य कर रहा है । उसने अपने गृह का निर्माण वर्ष 1969 में किया था । अभि. सा. 3 अशोक गुप्ता ने अपने साक्ष्य में अपना शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए प्रस्तुत किया । उसने यह कथन किया कि वह ग्राम पंचायत, धरमपुर का उप-प्रधान रह चुका है । ग्राम सिहादी चामरा, ग्राम पंचायत धरमपुर का एक भाग है । उसने यह कथन किया कि वर्ष 1942 में सिहादी चामरा में आग लग गई थी । वादियों के पूर्वजों ने आग बुझाने में महाराजा पटियाला के कर्मचारियों की सहायता की थी । महाराजा पटियाला ने ही वादियों के पूर्वजों को वाद भूमि दान में दी थी । वादियों के सभी गृहों का निर्माण आजादी के पूर्व वर्ष 1944-45 में हो गए थे । महाराजा पटियाला, वाद भूमि के स्वामी थे, इसके पश्चात् वाद भूमि हिमाचल प्रदेश राज्य में निहित हो गई थी किन्तु वाद भूमि का कब्जा वादियों के हित-पूर्वाधिकारियों में ही बना रहा । बलदेव सिंह (डी. एफ. ओ.) ने वर्ष 1974 में उस क्षेत्र का दौरा किया । उसने वादियों या उनके पूर्वजों से वन भूमि खाली करने के लिए कहा । उसे यह सूचित किया गया कि वाद भूमि को महाराजा पटियाला द्वारा वादियों या उनके पूर्वाधिकारियों को आबंटित की गई थी । प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन किया कि उसने आग लगने के बारे में सुना था किन्तु उसने स्वयं आग लगने की घटना नहीं देखी थी । उसने अपनी जन्म-तिथि 16 अगस्त, 1953 दी है । वह ग्राम पंचायत धरमपुर का प्रधान है, उसने इस बात की कभी भी जांच नहीं की कि वादियों की कालोनी अवैध है और इसलिए, पंचायत निधि का खर्च ऐसी कालोनी के लिए नहीं होना चाहिए था ।

17. अभि. सा. 4 गुरदेव सिंह ने अपनी मुख्य परीक्षा में अपना शपथ-पत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए प्रस्तुत किया जिसमें कम या अधिक प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए में कही गई बातें ही थीं । प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन किया कि वह धरमपुर में वर्ष 1953 से रह रहा है । महाराजा पटियाला ने विवादित भूमि दी थी । कालोनी वन भूमि पर है । वह ग्राम पंचायत धरमपुर का दो बार सदस्य रह चुका है । वन भूमि सरकार द्वारा आबंटित नहीं की जा सकती है । सरकार अप्राधिकृत कालोनी को कोई सहायता उपलब्ध नहीं कराती है । अभि. सा. 5 नायक सिंह ने अपनी मुख्य परीक्षा में अपना शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 5/ए प्रस्तुत किया जिसमें उसने अन्य साक्षियों के शपथपत्रों की तरह ही अभिसाक्ष्य दिया । प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन किया कि उसने यह सुना था कि चामरा वन में आग लगने की घटना हुई थी महाराजा पटियाला ने मौखिक तौर पर वादियों को पुनर्वासित किया था

वह वर्ष 1975 से वर्ष 2005 तक पंचायत का सदस्य और उपाध्यक्ष रह चुका है । उसने इस बात की कभी भी जांच नहीं की कि कालोनी प्राधिकृत या अप्राधिकृत है । अभि. सा. 6 जय कृष्ण, मीटर रीडर, विद्युत उप-खंड, धरमपुर ने आवेदनों और कनेक्शनों प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/ए से प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/एफ तक के आदेशों को साबित किया है ।

18. अभि. सा. 7 बलदेव सिंह ने अपने साक्ष्य में अपना शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ए प्रस्तुत किया जिसमें उसने यह कथन किया कि वर्ष 1974 में डी. एफ. ओ., सोलन के रूप में तैनात था । वर्ष 1975 में उसने वन भूमि पर कतिपय गृहों को पाया । उसे यह बताया गया कि उक्त भूमि को महाराजा पटियाला द्वारा दान में बंगला समुदाय के लोगों को दिया गया था । यह पाया गया कि वे व्यक्ति वर्ष 1942 से उस भूमि के कब्जे में थे । प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन किया कि बंगला समुदाय के लोग छोटे व्यापारों में लगे हुए थे । वर्ष 1975 में उसने उस भूमि पर लगभग 35 गृहों को पाया था, उनमें से कुछ गृह कच्चे और कुछ गृह पक्के थे । अभि. सा. 8 वीर सिंह, कार्यालय अधीक्षक, ग्राम पंचायत धरमपुर ने पंचायत संकल्प प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए से प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/एच और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/जे से प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/एल को साबित किया ।

19. मामला वापस करने के पश्चात्, अभि. सा. 1 साधराम ने अपनी मुख्य परीक्षा में अपना शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए-1 प्रस्तुत किया और यह कथन किया कि उनकी जीविका का मुख्य साधन वनों में वन उत्पाद इकट्ठे करना और सांप इत्यादि पकड़ना है । वे बंगला जाति के हैं । वे जंगल से सूखी लकड़ियां इकट्ठा करते हैं और उन्हें बेचकर अपनी आधारभूत आवश्यकताओं को पूरी करते हैं । प्रतिपरीक्षा में, उसने यह कथन किया कि वे शिकार नहीं करते हैं, वे रद्दी सामग्रियां इकट्ठा करते हैं, उनमें से कई विभिन्न कामों में लगे हुए हैं । अभि. सा. 2 राजेश कुमार ने अपने साक्ष्य में अपना शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए-1 दिया । उसने अभि. सा. 1 जैसा ही अभिसाक्ष्य दिया । वास्तव में, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए-1 और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए-1 की विशिष्ट सामग्रियां एक-समान हैं । प्रतिपरीक्षा में अभि. सा. 2 ने यह कथन किया कि बंगला समुदाय के लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते-जाते रहते हैं । उसने यह कथन किया कि वह एक होटल में नियोजित है । अभि. सा. 3 अशोक कुमार गुप्ता, अध्यक्ष, ग्राम पंचायत, धरमपुर ने अपने साक्ष्य में अपना शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए-1 प्रस्तुत किया जिसकी विशिष्ट सामग्रियां प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए-1

के ही समान हैं । प्रतिपरीक्षा में उसने इस बात से इनकार किया कि वाद भूमि, वन भूमि है । वन भूमि को किसी भी व्यक्ति को आबंटित नहीं किया जा सकता है । उसने यह कथन किया कि बंगला समुदाय के लोग एक स्थान पर नहीं ठहरते हैं वे घूमते रहते हैं । अभि. सा. 4 गुरदेव सिंह ने अपने साक्ष्य में अपना शपथपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए-1 प्रस्तुत किया जिसकी विशिष्ट सामग्रियां अभि. सा. 1 से अभि. सा. 3 की मुख्य परीक्षा में दी गई सामग्रियों के ही समान हैं । प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन किया कि सिहादी चामरा वन में बंगला समुदाय के लोग रह रहे थे ।

20. प्रत्यर्थी साक्षी 1 हितेन्द्र शर्मा, आर. ओ. सुबाथू रेंज ने अपने साक्ष्य में अपना शपथपत्र प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए दिया और यह कथन किया कि वादियों ने जंगल भूमि को अवैध तौर पर अधिभोग में लिया है और उन्हें अधिनियम के अधीन नोटिस जारी किया था । महाराजा पटियाला द्वारा वाद भूमि को कभी भी वादियों को आबंटित नहीं किया गया था । वाद भूमि, वर्ष 1937 में वन विभाग के कब्जे में आई थी और निरन्तर उसके कब्जे में बनी हुई है । वादियों का कब्जा वर्ष 1990-91 के दौरान वन बंदोबस्त के समय दर्शित हुआ । बलदेव सिंह, सेवानिवृत्त डी. एफ. ओ. ने वर्ष 1975 में वाद भूमि का दौरा नहीं किया था । वन भूमि को आबंटित नहीं किया जा सकता था । प्रतिपरीक्षा में, उसने यह स्वीकार किया कि प्रदर्श पी-1, प्रदर्श पी-2 और प्रदर्श पी-3 वाद भूमि है । उसने इस बात से इनकार किया कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए से प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/एल, घटनास्थल पर किए गए कार्यों का वर्णन है ।

21. प्रतिवादी साक्षी 2 काका राम, वन कानूनगो ने अपने साक्ष्य में अपना शपथपत्र प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए प्रस्तुत किया, जिसमें उसने यह कथन किया कि राज्य का स्वामित्व और वन विभाग के कब्जे को राजस्व अभिलेख में सही तौर पर अभिलिखित किया गया है । वह वर्ष 1977-99 के दौरान सोलन वन खंड में पटवारी के रूप में तैनात था । वर्ष 1991-92 में वन बंदोबस्त के दौरान वादियों के अधिक्रमण का पता चला था । प्रति-परीक्षा में उसने यह कथन किया कि प्रदर्श पी-1 से प्रदर्श पी-19 तक के फोटोग्राफ घटनास्थल के है उसे वन बंदोवस्त के पूर्व घटनास्थल की स्थिति के बारे में कोई जानकारी नहीं है । प्रतिवादियों ने प्रतिप्रेषण के पश्चात् कोई साक्ष्य नहीं दिया ।

22. संक्षेप में, अपीलार्थियों का पक्षकथन यह है कि वर्ष 1942 के आस-पास महाराजा पटियाला ने अपीलार्थियों के पूर्वाधिकारियों को वाद

भूमि दान में दी थी, उन्होंने इसके तत्काल पश्चात् अपने गृहों का निर्माण कर लिया था और तभी से वे वाद भूमि पर निर्मित गृहों में रह रहे हैं । वैकल्पिक रूप में अपीलार्थियों ने अपने प्रतिकूल कब्जे का पक्षकथन भी प्रस्तुत किया । उन्होंने अधिनियम, 2006 के अधीन संरक्षण की भी ईप्सा की है । वाद भूमि के ऊपर कुछ कच्चे और कुछ पक्के गृहों का निर्माण किया गया है किन्तु प्रत्यर्थियों का पक्षकथन यह है कि वाद भूमि के ऊपर अपीलार्थियों के अधिक्रमण का पता वर्ष 1990-92 के वन बंदोवस्त के दौरान चला, इसके पश्चात् अपीलार्थियों को वाद भूमि से बेदखल करने के लिए कदम उठाए गए । कलक्टर ने वाद भूमि के ऊपर अपीलार्थियों और अन्य अधिक्रमणकर्ताओं को पाया इसलिए उन्होंने तारीख 11 सितम्बर, 2000 के आदेश प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी के द्वारा बेदखली का आदेश दिया जिसे आयुक्त द्वारा भी तारीख 19 मई, 2001 के आदेश द्वारा कायम रखा गया ।

23. अपीलार्थी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि वाद भूमि को वर्ष 1942 के आस-पास महाराजा पटियाला द्वारा उन्हें आबंटित किया गया था । अपीलार्थी यह दर्शित करने के लिए राजस्व अभिलेख में महाराजा पटियाला का कोई लिखित या मौखिक आदेश प्रस्तुत नहीं कर सके कि वस्तुतः वाद भूमि को वर्ष 1942 में महाराजा पटियाला द्वारा अपीलार्थियों को आबंटित किया गया था । अपीलार्थियों ने यह अभिकथित किया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 भी पूर्व में अपीलार्थियों के स्वामित्व की जानकारी रखते हुए भी अपीलार्थियों को सामान्य सुविधाएं उपलब्ध करवाई थीं । अभिलेख पर यह साबित किया गया है कि वाद भूमि वन भूमि का भाग है । अपीलार्थियों के साक्ष्यों में यह कथन किया गया है कि वन भूमि आबंटित नहीं की जा सकती थी । किन्तु, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों के प्राधिकृत कालोनी के वोटरों को रिझाने के लिए पंचायत के प्राधिकारियों को उन्हें कुछ सामान्य सुविधाएं उपलब्ध कराई थीं किन्तु इससे अपीलार्थियों और अन्यों द्वारा वन भूमि पर निर्मित अप्राधिकृत कालोनी वैध नहीं हो जाती है । वाद भूमि पर अपीलार्थियों का साधारण कब्जा होने से ही उन्हें उस पर वैध हक प्रदत्त नहीं हो जाता है ।

24. अपीलार्थियों ने वाद भूमि के ऊपर दान के माध्यम से स्वामित्व और साथ ही प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद सम्पत्ति पर हक का विरोधाभाषी अभिवाक् लिया । तथापि, लम्बे समय तक कब्जे को तब तक प्रतिकूल कब्जे के रूप में अभिलिखित नहीं किया जा सकता है जब तक कि यह इस पक्षद्रोही आशय और निरन्तर कब्जे के रूप में इस प्रकार दर्शित

नहीं हो जाता है कि इसके आधार पर कानूनी रूप में प्रतिकूल कब्जे का दावा किया जा सके । राज्य को भी वर्ष 1990-92 में वन बंदोवस्त होने तक इस बात की जानकारी नहीं थी कि अपीलार्थियों का वाद भूमि के ऊपर अप्राधिकृत कब्जा है । राज्य को वर्ष 1990-92 में ही वन बंदोवस्त के दौरान वहां भूमि के ऊपर अपीलार्थियों के अप्राधिकृत कब्जे के बारे में जानकारी हुई । अभि. सा. 7 बलदेव सिंह ने यह कथन किया कि उसे वर्ष 1975 में डी. एफ. ओ., वन के रूप में वाद भूमि के ऊपर अपीलार्थियों के अप्राधिकृत कब्जे के बारे में जानकारी हुई थी और उसने उस पर विश्वास नहीं किया ।

25. अभि. सा. 7 द्वारा इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि जब उसे वाद भूमि के ऊपर अपीलार्थियों के अप्राधिकृत कब्जे की जानकारी हुई तो उसने वाद भूमि से अपीलार्थियों के बेदखली के लिए कोई कार्यवाही क्यों नहीं की अथवा इस बात की जानकारी उच्चतर प्राधिकारियों के अभिज्ञान में नहीं लाई कि वाद भूमि के ऊपर अपीलार्थियों का अप्राधिकृत कब्जा है । इस प्रकार, किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाए तो भी अपीलार्थी वाद भूमि के ऊपर अपने प्रतिकूल कब्जे को साबित करने में असफल रहे हैं ।

26. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि दोनों निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित की है कि सिविल न्यायालय को अधिनियम के अधीन कलक्टर द्वारा तारीख 11 सितम्बर, 2000 को और आयुक्त द्वारा तारीख 19 मई, 2001 के आदेश में अभिलिखित निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थियों के हक के प्रश्न पर विचार करने की कोई अधिकारिता नहीं थी । **चमारु राम** (उपर्युक्त) वाले मामले में व्यक्त मतों को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल के इस निवेदन में सार है । **चमारु राम** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिनियम की धारा 15 के अधीन अधिरोपित वर्जन से वादियों को सिविल वाद फाइल करके अपने हक का दावा करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है । तथापि, अपीलार्थी, वाद भूमि पर अपने हक का दावा करने में स्वतंत्र रूप से असफल रहे हैं । अपीलार्थियों की ओर से यह भी निवेदन किया गया है कि कलक्टर और आयुक्त ने सामूहिक रूप से अपीलार्थियों के विरुद्ध कार्यवाही करके त्रुटि कारित की है, यह निवेदन किया है कि व्यक्तिगत तौर पर अपीलार्थी विवादित भूमि के कतिपय भाग के कब्जे में हैं, इसलिए सभी

अपीलार्थियों के विरुद्ध एक साथ कलक्टर और आयुक्त द्वारा कार्यवाही नहीं की जा सकती थी । इस निवेदन के समर्थन में **रविन्द सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले की सहायता ली गई है । अपीलार्थियों ने एक साथ संयुक्त रूप से उनके विरुद्ध की गई कार्यवाही में कोई प्रतिकूलता दर्शित नहीं की है । इसलिए, अपीलार्थी **रविन्द सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले का लाभ नहीं ले सकते हैं ।

27. अंततः, यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी अधिनियम, 2006 के अधीन संरक्षित हैं । अपीलार्थियों ने वादपत्र में विभिन्न आधार लिए हैं । उन्होंने यह अभिवाक् किया है कि वे अनुसूचित जाति से संबंधित हैं । उन्होंने यह भी अभिवाक् किया है कि वे अनुसूचित जनजाति हैं । उनका यह भी पक्षकथन है कि वे बंगला समुदाय से संबंधित हैं । अधिनियम, 2006 की धारा 2 के उपखंड में परिभाषित वन निवासी अनुसूचित जनजाति का अभिप्राय अनुसूचित जनजातियों के उन सदस्यों या समुदाय से है जो प्राथमिक तौर पर वन निवासी हैं और जो अपनी सद्भाविक आवश्यकताओं के लिए वन या वन भूमि पर निर्भर करते हैं और उनमें अनुसूचित जनजाति चरवाहा समुदाय भी सम्मिलित थे । धारा 2 का खंड (थ) में परिभाषित "अन्य पारम्परिक वन निवासी" से अभिप्राय ऐसे किसी सदस्य या समुदाय से है जो प्राथमिक तौर पर तारीख 13 दिसम्बर, 2005 के पूर्व कम-कम से तीन पीढ़ियों से वन निवासी रहे हैं और जो अपनी सद्भाविक आवश्यकताओं के लिए वन या वन भूमि पर निर्भर थे । खंड (थ) का स्पष्टीकरण में उपबंधित पीढ़ी से अभिप्राय 25 वर्षों की समाविष्ट अवधि से है । अधिनियम, 2006 की धारा 3 वन निवासी अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारम्परिक वन निवासियों के वन अधिकारों को सुनिश्चित करती है ।

28. अपीलार्थियों ने वादपत्र में यह अभिवाक् किया कि बंगला जाति से संबंधित हैं और अनुसूचित जाति के हैं । उन्होंने यह भी अभिवाक् किया कि वे अनुसूचित जनजाति के हैं और वन क्षेत्र में पारम्परिक तौर पर निवास करते हैं । वे इस बारे में निश्चित नहीं हैं कि वे किस समुदाय या जाति से संबंधित हैं । अपीलार्थियों ने यह साबित नहीं किया कि उनके समुदाय प्राथमिक तौर पर वनों में निवास करते हैं और अपनी सद्भाविक आवश्यकताओं के लिए वनों या वन भूमि पर निर्भर करते हैं । इसके प्रतिकूल, साक्ष्य में यह आया है कि अपीलार्थियों में से कुछ विभिन्न स्थानों पर नियोजित हैं । वाद, वर्ष 2002 में फाइल किया गया था । अपीलार्थियों

ने यह अभिवाक् किया है कि वे ग्राम सिहादी में लगभग 60 वर्षों से अधिक समय से रह रहे हैं । इसलिए, अपीलार्थियों के अनुसार, वर्ष 1942 से या उसके आस-पास से वाद भूमि पर उनका अधिभोग है । अधिनियम, 2006, तारीख 13 दिसम्बर, 2005 के पूर्व से 25 वर्ष के प्रत्येक पीढ़ी के पिछले तीन पीढ़ियों से ऐसी भूमि पर अधिभोग रखने वाले को अन्य पारम्परिक वन निवासियों के रूप में मान्यता देता है । दूसरे शब्दों में, अधिनियम, 2006 उन पारम्परिक वन निवासियों को मान्यता देता है जिनका तारीख 13 दिसम्बर, 1930 तक वन भूमि पर अधिभोग रहा है । इस प्रकार, अपीलार्थी अधिनियम के अधीन अन्य पारम्परिक वन निवासी भी नहीं हैं जैसा कि उन्होंने अभिवाक् किया है ।

29. अपीलार्थी उस वाद भूमि के ऊपर जो वन भूमि का भाग है, मात्र अपने साधारण कब्जे के आधार पर अधिनियम, 2006 के अधीन संरक्षण का दावा नहीं कर सकते हैं । यह साधारण जानकारी की बात है कि व्यक्ति, व्यक्तिगत तौर पर या सामूहिक रूप से सरकारी भूमि पर अधिक्रमण नहीं कर सकता है, वे रस्सी खींचकर उस भूमि पर अधिक्रमण किए हुए हैं और प्राधिकारियों की आशय या अनाशय के साथ अधिक्रमणित भूमि पर बेदखली से बचे हुए हैं किन्तु, इसका अभिप्राय यह नहीं है कि ऐसे अधिक्रमणकर्ता समय बीतने के साथ सरकारी भूमि पर अपना हक अर्जित कर लेते हैं । अपीलार्थी, वाद भूमि के ऊपर अपने हक को साबित करने में बुरी तरह से असफल रहे हैं । दोनों निचले न्यायालयों ने सहवर्ती रूप से अपीलार्थियों के विरुद्ध निष्कर्ष अभिलिखित किया है । अपील में कोई सारवान् प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है । अपील में कोई गुणागुण नहीं है ।

30. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील असफल होती है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

———

शेर मंगत राम

बनाम

कृष्णा देवी और अन्य

तारीख 27 अगस्त, 2013

न्यायमूर्ति धर्म चन्द चौधरी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 39, नियम 1 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 100] – निचले न्यायालयों के आदेश – द्वितीय अपील – हस्तक्षेप – द्वितीय अपील में तथ्य के निष्कर्षों में तभी हस्तक्षेप किया जाना चाहिए जब ऐसा निर्णय या आदेश संकल्पनाओं और उपधारणाओं के आधार पर पारित किया गया हो ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 39, नियम 1 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 5] – परिसीमा संबंधी आक्षेप – सर्वप्रथम द्वितीय अपील में उठाया जाना – विधिमान्यता – जहां पक्षकार द्वारा निचले न्यायालय में परिसीमा संबंधी आक्षेप न किया गया हो वहां द्वितीय अपील प्रक्रम पर ऐसा आक्षेप उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

वर्तमान अपील में विद्वान् अपर न्यायाधीश, फास्ट ट्रेक न्यायालय ऊना द्वारा सिविल अपील सं. 85/2 के आर. बी. टी. सं. 111/04/2000 में तारीख 8 दिसंबर, 2006 के पारित निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – सुस्थापित विधिक सिद्धांतों के अनुसार द्वितीय अपील में तथ्य के निष्कर्षों में यदि वह त्रुटिपूर्ण भी हों, तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि वे उपधारणाओं और संकल्पनाओं के आधार पर अभिलेख पर अनुचित न पाए गए हों । किसी द्वितीय अपील में तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप के लिए क्षेत्र पूर्णतया परिसीमित है और ऐसा हस्तक्षेप विधिक रूप से केवल उस स्थिति में अनुज्ञेय है जहां उच्च न्यायालय द्वारा यह पाया गया हो कि दोनों निचले न्यायालय विधि के प्रश्न का मूल्यांकन करने में भ्रमित हुए हैं । अतः सुस्थापित विधिक स्थिति यह है कि उच्च न्यायालय को निचले न्यायालयों के स्थान पर अपने वस्तुपरक

समाधान के लिए प्रायिक रूप से तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । परिणामतः यह अपील, मामले से संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए और ऊपर विवेचित विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए विनिश्चित की जानी चाहिए । यदि दस्तावेजी साक्ष्य अर्थात् वर्ष 1960-61 की जमाबंदी प्रदर्श पी-1 और वर्ष 1955-56 की जमाबंदी पर विचार किया जाए तो यह प्रकट होता है कि मंदो वादान्तर्गत भूमि पर गैर अधिभोगी धृति धारक के रूप में काबिज था । यह तथ्य मौखिक साक्ष्य से भी साबित होता है । अतः यह उपधारित किया जाता है कि पक्षकारों के पिता मंदो वादान्तर्गत भूमि पर गैर अधिभोगी धृतिधारक के रूप में काबिज थे । वर्ष 1970-71 में हक अभिलेख अर्थात् जमाबंदी प्रदर्श पी-2 में प्रविष्टियों के संबंध में परिवर्तन है क्योंकि इस दस्तावेज से यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी ही वादान्तर्गत भूमि पर गैर अधिभोगी धृतिधारक के रूप में काबिज है । पूर्वतर प्रविष्टियों से जो जमाबंदी प्रदर्श पी-1 और पी-6 में उपदर्शित हैं और जिनसे यह भी साबित होता है कि वर्ष 1970-71 की पश्चात्वर्ती जमाबंदी में उसके हक में परिवर्तन विधि के अनुसार ठीक ही किया गया है, संबंधित सत्यता की उपधारणा के खंडन का भार प्रतिवादी पर था । तथापि, वह अपने इस भार को पूरा करने में पूर्ण रूप से विफल रहा है । यदि स्वामियों द्वारा उसे किराएदार माना जाता या उसके पिता स्वामियों के हक में भू-धृति अधिकार त्यक्त करते तो वह इस बारे में साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता था चाहे वह मौखिक साक्ष्य हो या दस्तावेजी साक्ष्य, क्योंकि मौखिक या लिखित करार से ही किराएदारी सृजित होती है । वादान्तर्गत भूमि के स्वामियों का यह कर्तव्य है कि वे प्रतिवादी के हक में किराएदारी के सृजन हक के तथ्य के संबंध में बेहतर साक्षी प्रस्तुत करते । तथापि, उसने अपने पक्षकथन के समर्थन में किसी स्वामी की परीक्षा नहीं की है । ऐसा कोई अभिलेख नहीं है यथा रपट रोजनामचा जो यह उपदर्शित करता कि उसे वादान्तर्गत भूमि का किराएदार बनाया गया था । यह उपदर्शित करने के लिए भी कोई साक्ष्य नहीं है कि राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियों के परिवर्तन से पूर्व और प्रतिवादी के कब्जे में वादान्तर्गत भूमि उपदर्शित करने से पूर्व पटवारी द्वारा रोजनामचा वाकयाती में किसी रिपोर्ट की प्रविष्टि की गई थी और न ही नम्बरदार द्वारा या गांव के किसी सम्माननीय व्यक्ति द्वारा इस परिवर्तन को साक्ष्यांकित किया गया था और इसके पश्चात् ही राजस्व अधिकारी को इस संबंध में आदेश पारित करने की अधिकारिता है । अतः इस बात का कोई सबूत नहीं है कि राजस्व अभिलेख में प्रतिवादी के नाम में वादान्तर्गत भूमि के कब्जे के संबंध में परिवर्तन करने

से पूर्व समुचित प्रक्रिया का अनुसरण किया गया था । यह सही है कि जमाबंदी प्रदर्श डी-1 से प्रदर्श डी-3 में प्रतिवादी को सतत रूप से वादान्तर्गत भूमि पर काबिज दिखाया गया है, तथापि, उसके द्वारा इन प्रविष्टियों के परिवर्तन को न्यायोचित ठहराने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है और इसलिए यह कहा जा सकता है कि जमाबंदियों में ऐसी प्रविष्टियों के संबंध में सत्यता की कोई उपधारणा नहीं की जा सकती । अतः वे प्रविष्टियां जिनका कोई आधार नहीं है और जो किसी साक्ष्य से समर्थित नहीं हैं और न ही इन्हें नियमों के अनुसार और इसके लिए विहित प्रक्रिया के अनुसार अभिलिखित किया गया है, प्रतिवादी के दावे को कोई सहायता प्रदान नहीं करतीं और न ही उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह वाद भूमि पर काबिज है । यह उपदर्शित करने के लिए कोई विधिक या स्वीकार्य साक्ष्य मौजूद नहीं है कि स्वामियों द्वारा उसे वाद भूमि पर किराएदार के रूप में काबिज किया गया था । यह उपदर्शित करने के लिए भी कोई साक्ष्य नहीं है कि उसके पिता मंदो ने अपने जीवनकाल के दौरान स्वामियों के हक में अपने धृति अधिकारों का त्यजन कर दिया था और उसके पश्चात् उसे इस भूमि पर किराएदार के रूप में माना गया था । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष साक्ष्य के प्रतिकूल हैं और एकमात्र प्रतिवादी ही अपने भाइयों के सिवाय वाद भूमि पर काबिज है । (पैरा 14, 19 और 20)

विधि का अगला सारभूत प्रश्न परिसीमा से संबंधित है । यह उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में कभी भी इस प्रश्न को नहीं उठाया है और न ही इस संबंध में किसी विवाद्यक पर जोर दिया गया है । वर्तमान अपील में इस न्यायालय के समक्ष प्रथम बार यह प्रश्न उठाया गया है । यह सही है कि परिसीमा की बाबत निष्कर्ष तथ्य का निष्कर्ष होता है और इसलिए इस द्वितीय अपील में हस्तक्षेप करने के लिए इस पर विचार नहीं किया जा सकता । तथापि, प्रतिवादी की ओर से दी गई इस दलील को दृष्टिगत करते हुए परिसीमा का प्रश्न अपील प्रक्रम सहित किसी भी प्रक्रम पर उठाया जा सकता है, वाद इस कारण से परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं माना जा सकता कि वादियों ने वाद भूमि पर राजस्व अभिलेख पर गलत प्रविष्टियों के संबंध में जानकारी होने पर प्रतिवादी से यह अनुरोध किया था कि वह वाद भूमि पर उनके दावे को स्वीकार करे और जब उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया तो अगले

दिन ही वाद फाइल कर दिया गया था । अन्यथा भी वादियों की गैर मौजूदगी में राजस्व अभिलेख पर निगमित गलत प्रविष्टि प्रतिवादी को वादियों को अलग करके वाद भूमि में कोई अधिकार, हक या हित प्रदत्त नहीं करती । वे सभी इस भूमि के पूर्वतर स्वामी श्री मंदो के पुत्र हैं इसलिए उन्हें भूमि में 1/3 भाग तक अधिकार, हक और हित है । ऊपर उल्लिखित विधि के सारभूत प्रश्न के संबंध में जो विवेचना की गई है उसके आधार पर इस न्यायालय को, विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि करने में कोई अवैधता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती है । (पैरा 21 और 22)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की आर. एस. ए. सं. 98.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अशोक शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एन. के. ठाकुर और सुश्री इशिता भंडारी

न्यायमूर्ति धर्म चन्द चौधरी – वर्तमान अपील में विद्वान् अपर न्यायाधीश, फास्ट ट्रेक न्यायालय ऊना द्वारा सिविल अपील सं. 85/2 के आर. बी. टी. सं. 111/04/2000 में तारीख 8 दिसंबर, 2006 के पारित निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया गया है । 1992 के मामला सं. 106 में विद्वान् ज्येष्ठ उप न्यायाधीश ऊना द्वारा तारीख 23 अक्तूबर, 2000 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल की गई थी । उप न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों द्वारा जिन्हें इस मामले में वादियों के रूप में निर्दिष्ट किया गया है, घोषणा के लिए पेश किए गए वाद को डिक्री किया था जिसकी पुष्टि करते हुए अपील खारिज की गई थी ।

2. वाद के पक्षकार आपस में सगे भाई हैं । विवाद खेवट सं. 96 मिनजुमला, खतौनी सं. 165/90, नया खसरा सं. 1579, माप 1050-85 हेक्टेयर के बारे में है । यह भूमि उप महाल मलाहत, नगर महाल, ऊना में स्थित है । स्वीकृततः वादान्तर्गत भूमि गैर अधिभोगी धृति की क्षमता में मंदो और उसके पूर्व हिताधिकारियों के कब्जे में थी । इसका खसरा सं. 116 था जो 4 बीघा थी । इस संबंध में 1960-61 की जमाबंदी प्रदर्श पी-1 का उल्लेख किया जा सकता है । मंदो की मृत्यु के पश्चात् यह भूमि अपीलार्थी जिसे आगे "प्रतिवादी" के रूप में निर्दिष्ट किया गया है, के कब्जे में अभिलिखित

की गई थी । इसे वर्ष 1970-71 की जमाबंदी प्रदर्श पी-2 में भी उपदर्शित किया गया है । वर्ष 1978-79, 1979-80 की जमाबंदियों में और वर्ष 1988-89 की मिस्ल हकीयत बंदोबस्ती में भी इन प्रविष्टियों का उल्लेख है जो क्रमशः प्रदर्श पी-3 से पी-5 हैं ।

3. वादियों ने यह दावा किया कि आरंभतः वादान्तर्गत भूमि उनके पिता मंदो के कब्जे में रही थी और उनकी मृत्यु के पश्चात् यह भूमि प्रतिवादी के साथ उनके संयुक्त कब्जे में थी । वे हिमाचल प्रदेश भू-धृति और भू-सुधार अधिनियम, 1975 के प्रवर्तन द्वारा इस भूमि के स्वामी बन गए थे । गांव की चकबंदी हुई थी और भूमि वर्ष 1978-79 की मिस्ल हकीयत बंदोबस्त प्रदर्श पी-3 की प्रविष्टियों के अनुसार नया खसरा सं. 181 और 183 में परिवर्तित हो गया था । गांव का पुनः बंदोबस्त हुआ था और खसरा सं. 1579 की मिस्ल हकीयत बंदोबस्त जदीद में उपदर्शित प्रविष्टियों के अनुसार और नामांतरण सं. 1354 द्वारा खसरा सं. 181 और 183 मिनजुमला से काटकर बनाया गया था और वादान्तर्गत भूमि ग्राम भरोलियान खुर्द के उप महाल महालत नगर में प्रविष्टि की गई थी । प्रतिवादी ने जिसके बारे में यह अभिकथित किया गया है कि वह एक चालाक और असरदार व्यक्ति है, वादान्तर्गत भूमि किसी प्रकार से वादियों की अनुपस्थिति में राजस्व कर्मचारियों से मिलकर अपने नाम में अभिलिखित कराकर कब्जा ले लिया । इन गलत प्रविष्टियों के आधार पर उसने उन्हें वादान्तर्गत भूमि से बेदखल करने की धमकी दी और जब उन्हें राजस्व अभिलेख में वादान्तर्गत भूमि के बारे में इन प्रविष्टियों के बारे में पता चला तो उन्होंने उससे ऐसी अवैध धमकियां न देने के बारे में अनुरोध किया किन्तु कोई परिणाम नहीं निकला । अतः इस आशय की घोषणा के लिए कि वादी प्रतिवादी के साथ वाद भूमि के 1/3 भाग पर संयुक्त स्वामियों के रूप में काबिज हैं और राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियां जिनमें प्रतिवादी को इस पर अनन्य कब्जे के रूप में दर्शाया गया है, गलत और अवैध हैं तथा पूर्ण रूप से शून्य हैं और इनका वादियों के अधिकार, हक या हित पर कोई प्रभाव नहीं है, अतः इन्हें अभिखंडित किया जाना चाहिए, वाद फाइल किया गया था और साथ ही प्रतिवादी को वाद भूमि पर वादियों के कब्जे में रुकावट डालने से रोकने के लिए स्थायी व्यादेश के अनुतोष की मांग की गई थी ।

4. मामले में उपस्थित प्रतिवादी ने वाद में विरोध किया है । उसने वाद की ग्राह्यता के संबंध में ये प्राथमिक आक्षेप उठाए हैं कि आवश्यक

पक्षकारों को पक्षकार न बनाने के कारण और विबंधन के सिद्धांत के आधार पर मामला ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है इसलिए सिविल न्यायालय को जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 57 और हिमाचल प्रदेश भू-धृति और भू-सुधार अधिनियम के अधीन वाद को ग्रहण करने और वाद का विचारण करने की अधिकारिता नहीं है ।

5. निस्संदेह गुण-दोष पर यह स्वीकार किया गया है कि वादान्तर्गत भूमि धृतिधारक की क्षमता में उनके पिता के कब्जे में थी । तथापि, उसने अपने जीवनकाल के दौरान स्वामियों के हक में भू-धृति का परित्याग कर दिया था । उनके पिता द्वारा भू-धृति को छोड़ने और परित्यक्त करने के पश्चात् स्वामियों ने प्रतिवादी से किराया लेकर उसे किराएदार मान लिया और इस प्रकार वह इस भूमि पर अनन्य रूप से काबिज है । वह अपने पिता से पृथक् रह रहा था और वाद भूमि पर खेती करके अपनी जीविका अर्जन कर रहा था और वादियों का कभी भी इस भूमि पर कब्जा नहीं रहा था । यह स्वीकार करते हुए बंदोबस्त क्रियाओं के दौरान एक नया खसरा सं. 1579 बनाया गया था, यह भी दलील दी गई है कि वादान्तर्गत भूमि का एक भाग प्रकाश चन्द और गुरमैल की जोतों के रूप में उपदर्शित किया गया है । अभिकथित रूप से उसने वादान्तर्गत भूमि के कुरों के सुधार करने के लिए बंदोबस्त प्राधिकारियों से सम्पर्क किया था । यह अभिकथित किया गया है कि वाद उपर्युक्त प्रकाश चन्द और गुरमैल की सलाह से वादियों द्वारा फाइल किया गया है । अतः यह दलील दी गई है कि वादी जिन्हें वाद भूमि पर किसी प्रकार का अधिकार, हक या हित प्राप्त नहीं था, किसी अनुतोष को पाने के हकदार नहीं हैं, जैसा कि वादपत्र में अनुरोध किया गया है इसलिए वाद खारिज किए जाने योग्य है ।

6. वादियों ने अपने जवाब पत्र में प्राथमिक आक्षेपों से गुण-दोष पर गलत होने के रूप में इनकार किया है और गुण-दोष पर वादपत्र में अभिकथित अपने पक्षकथन को दोहराया है ।

7. निचले न्यायालय ने पक्षकारों के उक्त अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

> "1. क्या वादी इस आशय की घोषणा के लिए हकदार हैं कि वादी, प्रतिवादी के साथ वादान्तर्गत भूमि में 1/3 भाग के संयुक्त स्वामी और काबिज हैं, जैसा कि अभिकथित किया गया है ? विरोधी पक्षकार ।

2. क्या वह प्रविष्टि जिसके द्वारा प्रतिवादी को वादान्तर्गत भूमि में गैर मौरूसी के रूप में अनन्य रूप से काबिज दिखाया गया है, शून्य है जैसा कि अभिकथित किया गया है ? विरोधी पक्षकार ।

3. क्या वादी स्थायी व्यादेश के अनुतोष के लिए हकदार हैं जैसा कि अभिकथित किया गया है ? विरोधी पक्षकार ।

4. क्या वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है और क्या वाद आवश्यक पक्षकारों को पक्षकार न बनाए जाने के कारण चलने योग्य नहीं है ? ओ. पी. डी. ।

5. क्या वादी अपने कार्य और आचरण के आधार पर वर्तमान वाद फाइल करने से विबंधित है ? ओ. पी. डी. ।

6. क्या पक्षकारों के पिता ने स्वामियों के हक में धृति को परित्यक्त कर दिया था और इसलिए प्रतिवादियों को स्वामियों द्वारा किराए के संदाय पर किराएदारों के रूप में लिया गया था ? ओ. पी. डी. ।

7. अनुतोष ।"

8. विद्वान् विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य को अभिलिखित करने और उस पर विचार करने के पश्चात् वाद डिक्री कर दिया जैसा कि आरंभ में उल्लिखित किया गया है ।

9. प्रतिवादी द्वारा विद्वान् निचले अपील न्यायालय के समक्ष फाइल की गई अपील में विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई और इसलिए इस अपील में आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा अपील खारिज की गई है ।

10. आक्षेपित निर्णय और डिक्री को इस एकमात्र आधार पर आक्षेपित किया गया है कि निचले न्यायालय वाद भूमि के संबंध में प्रविष्टियों पर विचार करने और उनका मूल्यांकन करने में विफल रहे हैं जैसा कि अधिकार संबंधी अभिलेख में उल्लिखित है और उनके निष्कर्ष अटकलों और कल्पनाओं पर आधारित हैं । उसके अनुसार कोई डिक्री पारित नहीं की जा सकती क्योंकि वादी कभी भी वाद भूमि पर काबिज नहीं रहे हैं और वह अकेले ही उस पर आरंभ से काबिज रहा है और अंततः वह वर्ष 1976 में विधि के प्रवर्तन द्वारा इसका स्वामी बन गया है । यह भी दलील दी गई है कि वर्ष 1992 में फाइल किया गया वाद प्रथमदृष्ट्या अत्यधिक कालवर्जित है ।

11. अपील निम्नलिखित विधि के सारभूत प्रश्नों पर ग्रहण की गई है :–

"1. क्या निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अभिलेख पर पेश किए गए साक्ष्य के प्रतिकूल होने के कारण विधि की दृष्टि में कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं यदि नहीं तो इसका प्रभाव ?

2. क्या इस सबूत के अभाव में कि भागतः भूमि कब्जे में है, भूमि से दूसरे पक्षकार को बेकब्जा करने से किसी पक्षकार को रोकने वाला व्यादेश भूमि पर भागतः कब्जे के बारे में पारित किया जा सकता है, यदि नहीं तो इसका प्रभाव ?

3. क्या वादी का वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है यदि हां तो इसका प्रभाव ?"

12. अपीलार्थी-प्रतिवादी का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री अशोक शर्मा ने जोर देकर यह दलील दी है कि सम्पूर्ण दस्तावेजी साक्ष्य से जो अभिलेख पर पेश किया गया है, एकमात्र यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रतिवादी वादान्तर्गत भूमि का अनन्य स्वामी है और काबिज है और वादियों से इस भूमि का कुछ लेना देना नहीं है । अतः श्री शर्मा के अनुसार वाद किसी भी प्रकार से डिक्री नहीं किया जा सकता ।

13. ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री एन. के. ठाकुर ने जिनकी सुश्री इशिता भंडारी ने सहायता की, प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों के जवाब में जोर देकर यह दलील दी कि चूंकि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा दिए गए समवर्ती निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् निकाले गए हैं इसलिए इनमें द्वितीय अपील में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जब तक कि न्यायनिर्णयन के लिए उद्भूत विधि का कोई सारभूत प्रश्न उत्पन्न न होता हो । अतः श्री ठाकुर ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री का समर्थन करते हुए अपील खारिज करने का अनुरोध किया है ।

14. सुस्थापित विधिक सिद्धांतों के अनुसार द्वितीय अपील में तथ्य के निष्कर्षों में यदि वह त्रुटिपूर्ण भी हों, तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि वे उपधारणाओं और संकल्पनाओं के आधार पर अभिलेख पर अनुचित न पाए गए हों । किसी द्वितीय अपील में तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप के लिए क्षेत्र पूर्णतया परिसीमित है और ऐसा

हस्तक्षेप विधिक रूप से केवल उस स्थिति में अनुज्ञेय है जहां उच्च न्यायालय द्वारा यह पाया गया हो कि दोनों निचले न्यायालय विधि के प्रश्न का मूल्यांकन करने में भ्रमित हुए हैं । अतः सुस्थापित विधिक स्थिति यह है कि उच्च न्यायालय को निचले न्यायालयों के स्थान पर अपने वस्तुपरक समाधान के लिए प्रायिक रूप से तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । परिणामतः यह अपील, मामले से संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए और ऊपर विवेचित विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए विनिश्चित की जानी चाहिए ।

15. वे विधिक प्रश्न जिन पर यह अपील ग्रहण की गई है, ये हैं कि अभिलिखित निष्कर्ष साक्ष्य के प्रतिकूल हैं और स्थायी व्यादेश की डिक्री किसी साक्ष्य के बिना पारित की गई है ।

16. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय को दोनों पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन नहीं करना चाहिए । साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन केवल उन मामलों में अनुज्ञेय होगा जहां प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित हों और अभिलेख पर के साक्ष्य पर आधारित न हों ।

17. चूंकि ऊपर निर्दिष्ट विधि के सारभूत प्रश्न सं. 1 और 2 साक्ष्य के गलत परिशीलन के आधार पर निर्णय की अनुचितता से संबंधित हैं इसलिए इनका न्यायनिर्णयन करने के लिए साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन आवश्यक हो गया है । अभिलेख पर मौखिक साक्ष्य वादी सं. 1 के स्वयं के साक्ष्य के रूप में पेश किया गया है जो साक्षी कठघरे में पी. डब्ल्यू.-1 के रूप में पेश हुआ है और प्रतिवादी सं. 1 साक्षी कठघरे में डी. डब्ल्यू.-1 के रूप में पेश हुआ है । दस्तावेजी साक्ष्य में जमाबंदियां सम्मिलित हैं जो दोनों पक्षकारों द्वारा पेश की गई वाद भूमि से संबंधित हैं ।

18. इसी प्रकार मौखिक साक्ष्य इस कारण से संतुलित है क्योंकि वादी सं. 1 ने न्यायालय में यह कथन किया है कि पक्षकारों के पिता ने जो वादान्तर्गत गैर धृतिधारक की क्षमता में वाद भूमि पर काबिज थे और बाद में अधिभोगी विधि के प्रवर्तन द्वारा इसके स्वामी बन गए थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् वे प्रतिवादी के साथ इस पर संयुक्त रूप से काबिज हैं तथापि, प्रतिवादी ने यह कथन किया है कि यद्यपि उसके पिता वादान्तर्गत भूमि पर गैर अधिभोगी धृतिधारक होने के रूप में उल्लिखित थे, तथापि, यह केवल एक कागजाती प्रविष्टि थी क्योंकि वह आरंभ से ही वादान्तर्गत भूमि पर

खेती करके काबिज बना रहा था और बाद में विधि के प्रवर्तन द्वारा इसका स्वामी बन गया था ।

19. यदि दस्तावेजी साक्ष्य अर्थात् वर्ष 1960-61 की जमाबंदी प्रदर्श पी-1 और वर्ष 1955-56 की जमाबंदी पर विचार किया जाए तो यह प्रकट होता है कि मंदो वादान्तर्गत भूमि पर गैर अधिभोगी धृतिधारक के रूप में काबिज था । यह तथ्य मौखिक साक्ष्य से भी साबित होता है । अतः यह उपधारित किया जाता है कि पक्षकारों के पिता मंदो वादान्तर्गत भूमि पर गैर अधिभोगी धृतिधारक के रूप में काबिज थे । वर्ष 1970-71 में हक अभिलेख अर्थात् जमाबंदी प्रदर्श पी-2 में प्रविष्टियों के संबंध में परिवर्तन है क्योंकि इस दस्तावेज से यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी ही वादान्तर्गत भूमि पर गैर अधिभोगी धृतिधारक के रूप में काबिज है । पूर्वतर प्रविष्टियों से जो जमाबंदी प्रदर्श पी-1 और पी-6 में उपदर्शित हैं और जिनसे यह भी साबित होता है कि वर्ष 1970-71 की पश्चात्वर्ती जमाबंदी में उसके हक में परिवर्तन विधि के अनुसार ठीक ही किया गया है, संबंधित सत्यता की उपधारणा के खंडन का भार प्रतिवादी पर था । तथापि, वह अपने इस भार को पूरा करने में पूर्ण रूप से विफल रहा है । यदि स्वामियों द्वारा उसे किराएदार माना जाता या उसके पिता स्वामियों के हक में भू-धृति अधिकार त्यक्त करते तो वह इस बारे में साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता था चाहे वह मौखिक साक्ष्य हो यह दस्तावेज़ी साक्ष्य, क्योंकि मौखिक या लिखित करार से ही किराएदारी सृजित होती है । वादान्तर्गत भूमि के स्वामियों का यह कर्तव्य है कि वे प्रतिवादी के हक में किराएदारी के सृजन के हक के तथ्य के संबंध में बेहतर साक्षी प्रस्तुत करते । तथापि, उसने अपने पक्षकथन के समर्थन में किसी स्वामी की परीक्षा नहीं की है । ऐसा कोई अभिलेख नहीं है यथा रपट रोजनामचा जो यह उपदर्शित करता कि उसे वादान्तर्गत भूमि का किराएदार बनाया गया था । यह उपदर्शित करने के लिए भी कोई साक्ष्य नहीं है कि राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियों के परिवर्तन से पूर्व और प्रतिवादी के कब्जे में वादान्तर्गत भूमि उपदर्शित करने से पूर्व पटवारी द्वारा रोजनामचा वाकयाती में किसी रिपोर्ट की प्रविष्टि की गई थी और न ही नम्बरदार द्वारा या गांव के किसी सम्माननीय व्यक्ति द्वारा इस परिवर्तन को साक्ष्यांकित किया गया था और इसके पश्चात् ही राजस्व अधिकारी को इस संबंध में आदेश पारित करने की अधिकारिता है ।

20. अतः इस बात का कोई सबूत नहीं है कि राजस्व अभिलेख में प्रतिवादी के नाम में वादान्तर्गत भूमि के कब्जे के संबंध में परिवर्तन करने

से पूर्व समुचित प्रक्रिया का अनुसरण किया गया था । यह सही है कि जमाबंदी प्रदर्श डी-1 से प्रदर्श डी-3 में प्रतिवादी को सतत रूप से वादान्तर्गत भूमि पर काबिज दिखाया गया है, तथापि, उसके द्वारा इन प्रविष्टियों के परिवर्तन को न्यायोचित ठहराने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है और इसलिए यह कहा जा सकता है कि जमाबंदियों में ऐसी प्रविष्टियों के संबंध में सत्यता की कोई उपधारणा नहीं की जा सकती । अतः वे प्रविष्टियां जिनका कोई आधार नहीं है और जो किसी साक्ष्य से समर्थित नहीं हैं और न ही इन्हें नियमों के अनुसार और इसके लिए विहित प्रक्रिया के अनुसार अभिलिखित किया गया है, प्रतिवादी के दावे को कोई सहायता प्रदान नहीं करतीं और न ही उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह वाद भूमि पर काबिज है । यह उपदर्शित करने के लिए कोई विधिक या स्वीकार्य साक्ष्य मौजूद नहीं है कि स्वामियों द्वारा उसे वाद भूमि पर किराएदार के रूप में काबिज किया गया था । यह उपदर्शित करने के लिए भी कोई साक्ष्य नहीं है कि उसके पिता मंदो ने अपने जीवनकाल के दौरान स्वामियों के हक में अपने धृति अधिकारों का त्यजन कर दिया था और उसके पश्चात् उसे इस भूमि पर किराएदार के रूप में माना गया था । अत: यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष साक्ष्य के प्रतिकूल हैं और एकमात्र प्रतिवादी ही अपने भाइयों के सिवाय वाद भूमि पर काबिज है ।

21. विधि का अगला सारभूत प्रश्न परिसीमा से संबंधित है । यह उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में कभी भी इस प्रश्न को नहीं उठाया है और न ही इस संबंध में किसी विवाद्यक पर जोर दिया गया है । वर्तमान अपील में इस न्यायालय के समक्ष प्रथम बार यह प्रश्न उठाया गया है । यह सही है कि परिसीमा की बाबत निष्कर्ष तथ्य का निष्कर्ष होता है और इसलिए इस द्वितीय अपील में हस्तक्षेप करने के लिए इस पर विचार नहीं किया जा सकता । तथापि, प्रतिवादी की ओर से दी गई इस दलील को दृष्टिगत करते हुए परिसीमा का प्रश्न अपील प्रक्रम सहित किसी भी प्रक्रम पर उठाया जा सकता है, वाद इस कारण से परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं माना जा सकता कि वादियों ने वाद भूमि पर राजस्व अभिलेख पर गलत प्रविष्टियों के संबंध में जानकारी होने पर प्रतिवादी से यह अनुरोध किया था कि वह वाद भूमि पर उनके दावे को स्वीकार करे और जब उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया तो अगले दिन ही वाद फाइल कर दिया गया था । अन्यथा भी वादियों की गैर

मौजूदगी में राजस्व अभिलेख पर निगमित गलत प्रविष्टि प्रतिवादी को वादियों को अलग करके वाद भूमि में कोई अधिकार, हक या हित प्रदत्त नहीं करती । वे सभी इस भूमि के पूर्वतर स्वामी श्री मंदो के पुत्र हैं इसलिए उन्हें भूमि में 1/3 भाग तक अधिकार, हक और हित है ।

22. ऊपर उल्लिखित विधि के सारभूत प्रश्न के संबंध में जो विवेचना की गई है उसके आधार पर इस न्यायालय को, विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि करने में कोई अवैधता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती है ।

23. उपर्युक्त कारणों से यह अपील विफल होती है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है । तथापि, खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

संसद् के अधिनियम

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990

(1990 का अधिनियम संख्यांक 20)

[30 अगस्त, 1990]

राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन करने और उससे संसक्त या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के इक्तालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख* को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "आयोग" से धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय महिला आयोग अभिप्रेत है ;

(ख) "सदस्य" से आयोग का सदस्य अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत* सदस्य-सचिव भी है ;

(ग) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

---

* 31-1-1992, देखिए अधिसूचना सं. का.आ. 99(अ), दिनांक 31-1-1992, भारत का राजपत्र, भाग 2, अनुभाग 3(ii), पृ.1.

अध्याय 2

राष्ट्रीय महिला आयोग

3. राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन – (1) केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय महिला आयोग के नाम से ज्ञात एक निकाय का गठन करेगी जो इस अधिनियम के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग और समनुदिष्ट कृत्यों का पालन करेगा ।

(2) यह आयोग निम्नलिखित से मिलकर बनेगा –

(क) केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्देशित एक अध्यक्ष, जो महिलाओं के हित के लिए समर्पित हो ;

(ख) केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे योग्य, सत्यनिष्ठ और प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से नामनिर्देशित पांच सदस्य जिन्हें विधि या विधायन, व्यवसाय संघ आंदोलन, महिलाओं की नियोजन संभाव्यताओं की वृद्धि के लिए समर्पित उद्योग या संगठन के प्रबंध, स्वैच्छिक महिला संगठन (जिनके अंतर्गत महिला कार्यकर्ती भी हैं), प्रशासन, आर्थिक विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा या सामाजिक कल्याण का अनुभव है :

परंतु उनमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों में से प्रत्येक का कम से कम एक सदस्य होगा ;

(ग) केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट एक सदस्य-सचिव जो –

(i) प्रबंध, संगठनात्मक संरचना या सामाजिक आंदोलन के क्षेत्र में विशेषज्ञ है, या

(ii) ऐसा अधिकारी है जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है अथवा संघ के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है और जिसके पास समुचित अनुभव है ।

4. अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें – (1) अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य तीन वर्ष से अनधिक ऐसी अवधि के लिए पद धारण करेगा जो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ।

(2) अध्यक्ष या कोई सदस्य (ऐसे सदस्य-सचिव से भिन्न जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है अथवा संघ के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है) केन्द्रीय सरकार को संबोधित लेख द्वारा किसी भी समय, यथास्थिति, अध्यक्ष या सदस्य का पद त्याग सकेगा ।

(3) केन्द्रीय सरकार, किसी व्यक्ति को, उपधारा (2) में निर्दिष्ट अध्यक्ष या सदस्य के पद से हटा देगी यदि वह व्यक्ति –

(क) अनुन्मोचित दिवालिया हो जाता है ;

(ख) ऐसे किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया और कारावास से दंडादिष्ट किया जाता है जिसमें केन्द्रीय सरकार की राय में नैतिक अधमता अंतर्ग्रस्त है ;

(ग) विकृत्तचित्त का हो जाता है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है ;

(घ) कार्य करने से इनकार करता है या कार्य करने में असमर्थ हो जाता है ;

(ङ) आयोग से अनुपस्थित रहने की इजाजत लिए बिना आयोग के लगातार तीन अधिवेशनों से अनुपस्थित रहता है ; या

(च) केन्द्रीय सरकार की राय में, उसने अध्यक्ष या सदस्य के पद का इस प्रकार दुरुपयोग किया है कि ऐसे व्यक्ति का पद पर बना रहना लोकहित के लिए अहितकर है :

परन्तु इस खंड के अधीन किसी व्यक्ति को तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति को इस विषय में सुनवाई का उचित अवसर नहीं दे दिया गया है ।

(4) उपधारा (2) के अधीन या अन्यथा होने वाली रिक्ति नए नामनिर्देशन द्वारा भरी जाएगी ।

(5) अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते, और उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

5. आयोग के अधिकारी और अन्य कर्मचारी – (1) केन्द्रीय सरकार आयोग के लिए ऐसे अधिकारियों और कर्मचारियों की व्यवस्था करेगी जो इस अधिनियम के अधीन आयोग के कृत्यों का दक्षतापूर्ण पालन करने के लिए आवश्यक हों ।

(2) आयोग के प्रयोजनों के लिए नियुक्त अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते और उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

6. वेतन और भत्तों का अनुदान में से संदत्त किया जाना – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा प्रशासनिक व्यय, जिनके अंतर्गत धारा 5 में निर्दिष्ट अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन भी हैं, धारा 11 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदत्त किए जाएंगे ।

7. रिक्तियों आदि से आयोग की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना – आयोग का कोई भी कार्य या कार्यवाही आयोग में कोई रिक्ति विद्यमान होने या उसके गठन में त्रुटि होने के आधार पर ही प्रश्नगत या अविधिमान्य नहीं होगी ।

8. आयोग की समितियां – (1) आयोग ऐसी समितियां नियुक्त कर सकेगा जो ऐसे विशेष प्रश्नों पर विचार करने के लिए आवश्यक हों जो आयोग द्वारा समय-समय पर उठाए जाएं ।

(2) आयोग को उपधारा (1) के अधीन नियुक्त किसी समिति के सदस्यों के रूप में, ऐसे व्यक्तियों में से जो आयोग के सदस्य नहीं हैं, उतने व्यक्ति सहयोजित करने की शक्ति होगी जितने वह उचित समझे और इस प्रकार सहयोजित व्यक्तियों को समिति के अधिवेशनों में उपस्थित रहने तथा उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होगा किन्तु उन्हें मतदान का अधिकार नहीं होगा ।

(3) इस प्रकार सहयोजित व्यक्ति समिति के अधिवेशनों में उपस्थित होने के लिए ऐसे भत्ते प्राप्त करने के हकदार होंगे जो विहित किए जाएं ।

9. प्रक्रिया का आयोग द्वारा विनियमित किया जाना – (1) आयोग या उसकी समिति का अधिवेशन जब भी आवश्यक हो किया जाएगा और वह ऐसे समय और स्थान पर किया जाएगा जो अध्यक्ष ठीक समझे ।

(2) आयोग अपनी प्रक्रिया तथा अपनी समितियों की प्रक्रिया स्वयं विनियमित करेगा ।

(3) आयोग के सभी आदेश और विनिश्चय सदस्य-सचिव द्वारा या इस निमित्त सदस्य-सचिव द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत आयोग के किसी अन्य अधिकारी द्वारा अधिप्रमाणित किए जाएंगे ।

अध्याय 3

आयोग के कृत्य

10. आयोग के कृत्य – (1) आयोग निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का पालन करेगा, अर्थात् :–

(क) महिलाओं के लिए संविधान और अन्य विधियों के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण और परीक्षा करना ;

(ख) उन रक्षोपायों के कार्यकरण के बारे में प्रति वर्ष, और ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग ठीक समझे, केन्द्रीय सरकार को रिपोर्ट देना ;

(ग) ऐसी रिपोर्टों में महिलाओं की दशा सुधारने के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा उन रक्षोपायों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिशें करना ;

(घ) संविधान और अन्य विधियों के महिलाओं को प्रभावित करने वाले विद्यमान उपबंधों का समय-समय पर पुनर्विलोकन करना और उनके संशोधनों की सिफारिश करना जिससे कि ऐसे विधानों में किसी कमी, अपर्याप्तता या त्रुटियों को दूर करने के लिए उपचारी विधायी उपायों का सुझाव दिया जा सके ;

(ङ) संविधान और अन्य विधियों के उपबंधों के महिलाओं से संबंधित अतिक्रमण के मामलों को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष उठाना ;

(च) निम्नलिखित से संबंधित विषयों पर शिकायतों की जांच करना और स्वप्रेरणा से ध्यान देना –

(i) महिलाओं के अधिकारों का वंचन ;

(ii) महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए और समता तथा विकास का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए भी अधिनियमित विधियों का अक्रियान्वयन ;

(iii) महिलाओं की कठिनाइयों को कम करने और उनका कल्याण सुनिश्चित करने तथा उनको अनुतोष उपलब्ध कराने

के प्रयोजनार्थ नीतिगत विनिश्चयों, मार्गदर्शक सिद्धांतों या अनुदेशों का अननुपालन,

और ऐसे विषयों से उद्‌भूत प्रश्नों को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष उठाना ;

(छ) महिलाओं के विरुद्ध विभेद और अत्याचारों से उद्‌भूत विनिर्दिष्ट समस्याओं या स्थितियों का विशेष अध्ययन या अन्वेषण कराना और बाधाओं का पता लगाना जिससे कि उनको दूर करने की कार्य योजनाओं की सिफारिश की जा सके ;

(ज) संवर्धन और शिक्षा संबंधी अनुसंधान करना जिससे कि महिलाओं का सभी क्षेत्रों में सम्यक् प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के उपायों का सुझाव दिया जा सके और उनकी उन्नति में अड़चन डालने के लिए उत्तरदायी कारणों का पता लगाना जैसे कि आवास और बुनियादी सेवाओं की प्राप्ति में कमी उबाऊपन और उपजीविकाजन्य स्वास्थ्य परिसंकटों को कम करने के लिए और महिलाओं की उत्पादकता की वृद्धि के लिए सहायक सेवाओं और प्रौद्योगिकी की अपर्याप्तता ;

(झ) महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना और उन पर सलाह देना ;

(ञ) संघ और किसी राज्य के अधीन महिलाओं के विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना ;

(ट) किसी जेल, सुधार गृह, महिलाओं की संस्था या अभिरक्षा के अन्य स्थान का, जहां महिलाओं को बंदी के रूप में या अन्यथा रखा जाता है, निरीक्षण करना या करवाना और उपचारी कार्रवाई के लिए, यदि आवश्यक हो, संबंधित प्राधिकारियों से बातचीत करना ;

(ठ) बहुसंख्यक महिलाओं को प्रभावित करने वाले प्रश्नों से संबंधित मुकदमों के लिए धन उपलब्ध कराना ;

(ड) महिलाओं से संबंधित किसी बात के, और विशिष्टतया उन विभिन्न कठिनाइयों के बारे में जिनके अधीन महिलाएं कार्य करती हैं, सरकार को समय-समय पर रिपोर्ट देना ;

(ढ) कोई अन्य विषय जिसे केन्द्रीय सरकार उसे निर्दिष्ट करे ।

(2) केन्द्रीय सरकार, उपधारा (1) के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट सभी

रिपोर्टों को संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी और उसके साथ संघ से संबंधित सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफारिशें अस्वीकृत की गई हैं तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा ।

(3) जहां कोई ऐसी रिपोर्ट या उसका कोई भाग किसी ऐसे विषय से संबंधित है जिसका किसी राज्य सरकार से संबंध है वहां आयोग ऐसी रिपोर्ट या उसके भाग की एक प्रति उस राज्य सरकार को भेजेगा जो उसे राज्य के विधान-मंडल के समक्ष रखवाएगी और उसके साथ राज्य से संबंधित सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफारिशें अस्वीकृत की गई हैं तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा ।

(4) आयोग को उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (च) के उपखंड (i) में निर्दिष्ट किसी विषय का अन्वेषण करते समय और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में वे सभी शक्तियां होंगी जो वाद का विचारण करने वाले सिविल न्यायालय की हैं, अर्थात् :–

(क) भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अपेक्षा करना ;

(ङ) साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ; और

(च) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाए ।

अध्याय 4

वित्त, लेखे और लेखापरीक्षा

11. केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान – (1) केन्द्रीय सरकार, संसद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशि का संदाय करेगी जो केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए ठीक समझे ।

(2) आयोग इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए उतनी धनराशि खर्च कर सकेगा जितनी वह ठीक समझे और वह धनराशि उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय माना जाएगा ।

12. लेखे और संपरीक्षा – (1) आयोग, समुचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो केन्द्रीय सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक ऐसे अंतरालों पर करेगा जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और उस संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और इस अधिनियम के अधीन आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को उस संपरीक्षा के संबंध में वही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में साधारणतया होते हैं और उसे विशिष्टतया बहियां, लेखा, संबंधित वाउचर और अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने और आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा यथाप्रमाणित आयोग का लेखा और साथ ही उस पर संपरीक्षा रिपोर्ट आयोग द्वारा केन्द्रीय सरकार को प्रति वर्ष भेजी जाएगी ।

13. वार्षिक रिपोर्ट – आयोग, प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए अपनी वार्षिक रिपोर्ट, जिसमें पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष के दौरान उसके क्रियाकलापों का पूर्ण विवरण होगा, ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय पर, जो विहित किया जाए तैयार करेगा और उसकी एक प्रति केन्द्रीय सरकार को भेजेगा ।

14. वार्षिक रिपोर्ट और संपरीक्षा रिपोर्ट का संसद् के समक्ष रखा जाना – केन्द्रीय सरकार वार्षिक रिपोर्ट, रिपोर्ट की प्राप्ति के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी जिसके साथ उसमें अंतर्विष्ट सिफारिशों पर, जहां तक उनका संबंध केन्द्रीय सरकार से है, की गई कार्रवाई और यदि कोई ऐसी सिफारिशें अस्वीकृत की गई हैं तो अस्वीकृति के कारण का ज्ञापन और संपरीक्षा रिपोर्ट होगी ।

अध्याय 5

प्रकीर्ण

15. आयोग के अध्यक्ष, सदस्यों और कर्मचारिवृंद का लोक सेवक होना – आयोग का अध्यक्ष, उसके सदस्य, अधिकारी और अन्य कर्मचारी भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझे जाएंगे ।

16. केन्द्रीय सरकार आयोग से परामर्श करेगी – केन्द्रीय सरकार, महिलाओं को प्रभावित करने वाले सभी प्रमुख नीति विषयक मामलों पर आयोग से परामर्श करेगी ।

17. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को क्रियान्वित करने के लिए नियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 4 की उपधारा (5) के अधीन अध्यक्ष और सदस्यों को और धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) धारा 8 की उपधारा (3) के अधीन सहयोजित व्यक्तियों द्वारा समिति के अधिवेशनों में उपस्थित होने के लिए भत्ते ;

(ग) धारा 10 की उपधारा (4) के खंड (च) के अधीन अन्य विषय ;

(घ) वह प्ररूप जिसमें लेखाओं का वार्षिक विवरण धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन रखा जाएगा ;

(ङ) वह प्ररूप जिसमें और वह समय जब वार्षिक रिपोर्ट धारा 13 के अधीन तैयार की जाएगी ;

(च) कोई अन्य विषय जिसे विहित किया जाना अपेक्षित है या किया जाए ।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

———————